मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका, दिसम्बर २०२३, वर्ष ०७, अंक १२

राधारानी ब्रजयात्रा २०२३ (विशेषांक)

मूल्य १०/-

०१

राधारानी ब्रजयात्रा २०२३ की झलकियाँ

+

विषय- सूचिका

प्रसंग		पृष्ठांक
१	श्रीलीलारसनिधि 'राधा नाम'	०५
२	'राधा नामाराधन' से रसमयी सिद्धि सहज	०८
३	श्रीराधाराधक 'कृष्ण'	१०
४	'मन्दिरों' का वास्तविक वैभव 'सत्संग-आराधन'	१२
५.	'श्रीनामाराधना' से धाम-स्वरूप का प्राकट्य	१६
६.	सच्ची दीक्षा का स्वरूप 'संकीर्तन में प्रगाढ़ प्रेम'	१८
७.	सबसे बड़ा संरक्षक 'श्रीभगवन्नाम'	२१
८.	शक्ति का स्रोत 'संकीर्तन'	२४
९.	जन्म-मरण का सच्चा साथी 'श्रीइष्ट-नाम'	२६
१०.	सृष्टि का मूल 'भगवन्नाम'	२८
११.	'श्रीनाम-साधना' से ही जीव-जगत जीवित	२९
१२.	'नामी' का साक्षात् स्वरूप 'श्रीनाम भगवान्'	३२

|| राधे किशोरी दया करो ||
हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो । –
पूज्य श्रीबाबामहाराज कृत नित्य स्तुति-पद

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**
प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**
mob. **राधाकांत शास्त्री** 9927338666
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ७:३० से ८:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"
*** योजना ***
अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत ३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

प्रकाशकीय

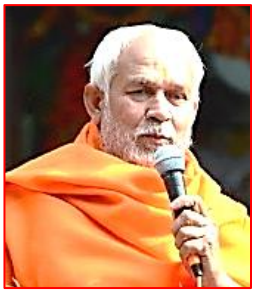

सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में सेवा तथा कलिकाल में केवल 'भगवन्नाम' । श्रीभगवान् के नाम से बड़ा कोई साधन नहीं है । यही कारण है कि कलियुग को अत्यन्त महिमामण्डित किया गया है । किसी को नाम का रस मिल गया तो समझ लीजिये कि उस पर भगवान् की अनन्त कृपा है । बड़ा सुन्दर अवसर प्रभु ने प्रदान किया है कि हमें कलियुग में जन्म दिया और वातावरण भी अनुकूल दिया परन्तु हम ऐसे हैं कि उसका लाभ नहीं ले पाते और राग-द्वेषादि के कारण नामापराध या धामापराध करते रहते हैं । भक्तों में अभाव हमें घोर गर्त में पहुँचा देता है । हमारे ऊपर कुसंगादि का प्रभाव तभी होगा जब हमारे हृदय में अभाव होगा । कुत्ते तक में भी हमें भाव रखना चाहिए । अभाव से अपना नाश होता है अन्यथा नहीं । भगवान् के नाम की महिमा बड़ी रहस्यमयी और अनन्त है । समस्त देवी-देवताओं की तो बात ही क्या, स्वयं भगवान् भी अपने नाम की महिमा का गान नहीं कर सकते – 'राम न सकहिं नाम गुण गाई ।' कलियुग में नाम-महिमा को सर्वोत्कृष्ट माना गया है । श्रीनारदपुराण (१/४१/११५) में कहा गया है –

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेनामैव केवलम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

'श्रीभगवन्नाम' बड़ा ही सुगम साधन है, इसके सभी अधिकारी हैं, सभी के लिये यह ग्राह्य है । मूर्ख से मूर्ख प्राणी भी नाम-जप अथवा भगवन्नाम-कीर्तन कर सकता है । इसमें कोई खर्चा भी नहीं लगता और न ही परिश्रम । यह सम्पूर्ण पापों का शमन करने वाली महौषधि है । नामोच्चारण करने वाला यदि महापापात्मा भी है तो भी उसे कोई यमयातना नहीं झेलनी पड़ेगी ।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ॥ (विष्णुपुराण ६/८/१९)

भाव-कुभाव कैसी भी अवस्था में नामाश्रय लो, सदैव मंगल ही होगा – **'भाव कुभाव अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दसहू ॥'** एक-एक क्षण अपने आराध्य के बिना युगों-युगों के समान व्यतीत हो, उस समय सारा जगत शून्य दिखायी देता हो; उसे कहते हैं विरह, उस विरह में मिलन की तीव्र उत्कण्ठा होती है । विरह के दो रूप होते हैं – १. भक्तोद्धारक रूप – जो केवल भक्तों को ही दिखायी देता है यथा 'श्रीगोवर्द्धननाथजी' महाप्रभुजी आदि से साक्षात् बात किया करते थे । २. दूसरा है सर्वोद्धारक रूप – इसमें विग्रह रूप में प्रभु सब पर कृपा करते हैं । कलियुग में विग्रह रूप युगधर्म के कारण म्लेच्छों के आतंक से स्थान छोड़कर चले गये । कलियुग में अधिकांशतः पापात्माओं का जन्म होता है । सर्वत्र पापमय वातावरण होने पर इस कलिकाल में निराश होने की आवश्यकता नहीं है । कलियुग में एक ऐसा गुण है, जो किसी युग में नहीं है । धन्य हैं वे जन जो इस युग में भगवान् का नित्य कीर्तन करते हैं । जो फल कलियुग में भगवान् के नाम का कीर्तन करने से मिलता है, वह अन्य किसी युग में लाखों वर्ष की तपस्या आदि से भी नहीं मिल पाता है । बड़े-बड़े देवगण भी इसी कारण कलियुग में अपना जन्म चाहते हैं । एक रात्रि पर्यन्त भी कोई प्राणी कृष्ण-कीर्तन कर ले तो लाखों जन्मों का पुण्य फल उसे प्राप्त हो जाता है । बहुत अधिक प्रभु-कृपा होती है तभी भगवन्नाम-गुण-कीर्तन का अवसर प्राप्त होता है और शनैः-शनैः जीव 'नामपरायण' हो जाता है – "कलियुग केवल नाम अधारा । सुमिर-सुमिर नर उतरहिं पारा ॥ एहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥ रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहिं । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥" इस कलियुग में नाम के अतिरिक्त अन्य कोई साधन सम्भव ही नहीं है क्योंकि समस्त साधन शुद्धि के बिना होंगे ही नहीं और पूर्णतया शुद्धि का प्रश्न ही नहीं है ।

नहिं कलि करम न भगति विवेकू । राम नाम अवलम्बन एकू ॥ (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – २७)

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीलीलारसनिधि 'राधा नाम'

श्रीरमणरेती में हुए बाबाश्री के वक्तव्य (३०/१०/२०२२) से संकलित

पृथ्वी के समस्त तीर्थ तो ब्रज में ही श्रीराधारानी के चरणकमलों में स्थित हैं, जैसा कि ब्रजनिष्ठ महापुरुषों का कथन है – **कीरतिसुता के पग-पग में प्रयाग जहाँ,**
केशव की कुञ्ज-केलि कोटि-कोटि काशी हैं ।
यमुना में जगन्नाथ रेणुका में रामेश्वर,
बद्री-केदारनाथ फिरत दास-दासी हैं ॥

पृथ्वी के समस्त तीर्थ अपने उद्धार के लिए ब्रजभूमि में आते हैं, इसलिए ब्रज में निवास करने वालों को ब्रज के बाहर स्थित तीर्थों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

श्रीराधारानी के धाम बरसाना, गह्वरवन में कन्यायें (आराधिकाएँ) अखण्डवास कर रही हैं और नित्य रसमय गान और नृत्य के माध्यम से प्रिया-प्रियतम की आराधना करती हैं । श्रीजी के करकमलों द्वारा निर्मित गह्वरवन में सैकड़ों की संख्या में इन साध्वियों के द्वारा प्रतिदिन जो नृत्य-आराधना की जाती है, ऐसा भारत तो क्या विश्व में कहीं नहीं है । वस्तुतः ब्रज में आराधना तो नृत्य की पद्धति द्वारा ही की जाती है । सम्पूर्ण विश्व में महारास प्रसिद्ध हुआ, क्यों प्रसिद्ध हुआ ? उस त्रिगुणातीत महारास में रासमण्डल पर रासेश्वरी श्रीराधिकारानी विराजती हैं और अनन्त गोपिकाओं के मध्य श्रीजी को प्रसन्न करने व उनकी आराधना हेतु स्वयं रासेश्वर श्रीश्यामसुन्दर नृत्य करते हैं; ऐसा संसार के इतिहास में आज तक कभी घटित नहीं हुआ, यह अत्यधिक आश्चर्यजनक है । इस लीला में कोई मर्यादा नहीं है । मर्यादा क्या होगी, जब स्वयं त्रिलोकीनाथ 'रासेश्वरी' की नृत्य-गान करके आराधना करते हैं । भगवान् ने ब्रजलीला के अन्तर्गत समस्त लौकिक-वैदिक मर्यादाओं को तोड़ दिया और अनन्त जगत् को यह दिखाया कि श्रीराधारानी ही मेरी इष्ट हैं; उन्हीं वृषभानुनन्दिनी श्रीकिशोरीजी का गाँव है 'बरसाना', इस तथ्य से सभी अवगत हैं । अतएव उस बरसाने में जो कन्यायें प्रतिदिन श्रीजी की आराधना करती हैं, उन्हें व्यासगद्दी पर बैठने का अधिकार नहीं है – ऐसा कहने वाला न तो श्रीजी का उपासक है, न था और न कभी होगा । जहाँ परमेश्वर श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति, उनकी आत्मस्वरूपा 'श्रीराधिकारानी' साक्षात् विराजती हैं, वहाँ समस्त मर्यादायें समाप्त हो जाती हैं । सुधानिधिकार ने राधारानी की आराधना करने वाले (राधाराधक) कृष्ण को वन्दन किया है –

रसघनमोहनमूर्तिं विचित्रकेलिमहोत्सवोल्लसितम् ।
राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २००)

भगवान् श्यामसुन्दर रसघनमोहनमूर्ति हैं, वे अद्भुत रसमयी केलि किया करते हैं किन्तु उनके मस्तक पर जो मयूरपंख सुशोभित है, जिसके कारण वे विश्वविख्यात हुए, वह मयूरपंख भी केवल भगवान् श्यामसुन्दर ही धारण करते हैं, अन्य किसी भी अवतार में प्रभु ने मयूरपंख धारण नहीं किया ।

कृष्णावतार में ही मोरपंखधारी श्रीप्रभु राधिकारानी के चरणों में विलोडन करते हैं – 'राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे' – ऐसे श्रीकृष्ण की हम उपासना करते हैं । ऐसी स्थिति में वहाँ मर्यादा कहाँ है ? मर्यादा केवल यही है कि श्रीराधारानी की आराधना करो, जिनकी आराधना अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण कर रहे हैं, तब फिर वहाँ क्या संदेह है और इसीलिए उनको सर्वेश्वरी कहा गया है । सर्वेश्वर भगवान् की भी जो ईश्वरी हैं, वे हैं श्रीराधारानी । इसलिए मानमन्दिर की 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' में न कोई मर्यादा है, न कोई शुल्क है । धन के बिना दुनिया का कोई काम नहीं चलता है किन्तु आश्चर्य है कि राधारानी की कृपा से उनकी यात्रा ब्रज की सबसे बड़ी पद यात्रा बन गयी है । कोरोना काल में अन्य ब्रजयात्रायें बन्द हो गयीं थीं, उस समय हमारे यहाँ के प्रबन्धकों ने मुझसे पूछा कि कोरोना की ऐसी विभीषिका में यात्रा कैसे निकाली जाए तो हमने कहा कि कोरोना आदि कुछ नहीं है, श्रीराधिकारानी के सामने कोरोना क्या चीज है, इसलिए राधारानी ब्रजयात्रा इस आपदा काल में भी चलेगी, चाहे शासन इसकी अनुमति दे अथवा न दे । शासन की ओर से सौ-सवा सौ से अधिक लोगों को यात्रा में ले जाने का आदेश नहीं था परन्तु मानिनी के मान मन्दिर

की उस कोरोना कालीन ब्रजयात्रा में ६०० श्रद्धालुओं ने पूरे एक महीने तक ब्रजचौरासी कोस की परिक्रमा की, फिर भी न तो शासन की ओर से कोई प्रतिबन्ध लगाया गया और न ही अन्य किसी प्रकार की विघ्न-बाधा उपस्थित हुई, न ही कोई बीमार हुआ । इस ब्रजयात्रा का ब्रज के समस्त गाँवों में भरपूर सम्मान हुआ । यात्रियों के भोजन का प्रबन्ध भी ब्रजवासियों की ओर से किया गया, मान मन्दिर सेवा संस्थान को रसोई की व्यवस्था करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी । सन् १९८८ से प्रारम्भ हुई श्रीराधारानी ब्रजयात्रा आज भी पूर्णतया निःशुल्क है, किसी व्यक्ति से ब्रजपरिक्रमा हेतु एक भी पैसा नहीं लिया जाता । स्वेच्छा से कोई कुछ सहयोग करना चाहे तो कर सकता है, चाहे वह ब्रजवासी हो अथवा ब्रज के बाहर का हो । सामान्य परिस्थितयों में इस यात्रा में लगभग पन्द्रह हजार से अधिक व्यक्ति चालीस दिनों तक ब्रज परिक्रमा करते हैं । यह सब एकमात्र श्रीराधिकारानी की ही कृपा है, अन्यथा मैं तो एक छोटा सा आदमी हूँ, मैं न तो महन्त हूँ और न ही श्रीमहन्त हूँ । मैं तो केवल राधे-राधे कहता हूँ और कुछ नहीं करता हूँ । श्रीराधिकारानी के यश से परिपूर्ण ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि के अनुसार –

यज्जापः सकृद् एव गोकुलपतेराकर्षस्तत्क्षणाद्
यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत् तुच्छता ।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः
श्रीकृष्णोऽपि तद् अद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥

(श्रीराधासुधानिधि - ९४)

जिन श्रीजी का 'राधा' नाम स्वयं श्रीकृष्ण जपते हैं । 'सकृद् एव गोकुलपतेराकर्षस्तत्क्षणाद्' - 'सकृद्' अर्थात् एक बार राधा नाम का उच्चारण कर लो तो गोकुलपति श्रीकृष्ण उसी समय आकर्षित हो जाते हैं और सोचते हैं – 'ओहो ! किसने राधा नाम का उच्चारण किया ?' श्रीजी का नाम लेने वाला समस्त पुरुषार्थों के प्रति तुच्छ बुद्धि रखता है । उसके लिए पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि अत्यधिक तुच्छ हैं । उसका यही भाव रहता है कि मैं राधा नाम का उच्चारण करता हूँ तो मुझे पुरुषार्थ चतुष्टय से क्या प्रयोजन है, राधा नाम के अतिरिक्त किसी अन्य साधन को करने की क्या आवश्यकता है, क्योंकि - **यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः** – जिस राधा नाम से अंकित मन्त्र अर्थात् केवल राधा नाम का जाप स्वयं माधव प्रीतिपूर्वक करते हैं, निरन्तर राधा-राधा नाम जपते हैं, इसमें ह्रीं, क्लीं आदि किसी अन्य विधान का संयोग नहीं करते, उनके पास इतना समय ही नहीं है कि राधा नाम के साथ ह्रीं, क्लीं प्रयुक्त करें । श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं कि वे ही दो अक्षर 'रा-धा' मेरे हृदय में स्फुरित हों ।

कालिन्दीतटकुञ्जरमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पद
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।

श्यामसुन्दर यमुना तट पर जाकर किसी एकान्त कुञ्ज में बैठकर योगीन्द्रों की तरह एकाग्रचित्त के साथ राधा नाम जपते हैं । केवल जप ही नहीं करते अपितु श्रीराधारानी के चरणकमलों का ध्यान करते हैं । राधा नाम वे सदा ही जपते हैं । कैसे जपते हैं, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर श्रीकृष्ण 'राधा' नाम का जप करते हैं । 'सदा' का आशय है कि फिर न तो वे सृष्टि निर्माण व पालन का ध्यान रखते हैं, संसार के सारे कार्यों को भूल जाते हैं, उनके पास न कोई मर्यादा है और न ही कोई बन्धन है । यहाँ तक कि अपने भक्तों की सुरक्षा सम्बन्धी विशेष कर्तव्य को भी भूल जाते हैं, भक्त- परिपालन को भी छोड़ बैठते हैं; ऐसा परम विचित्र यह 'राधा' नाम है । श्रीराधारानी के अनन्य भक्त गह्वरवनवासी श्रीकिशोरीअलीजी का राधानाम-माहात्म्य के सन्दर्भ में यह विशेष पद है – **'आधो नाम तारिहैं श्रीराधा ।'** पूरा राधा नाम कहने की आवश्यकता नहीं है, केवल 'रा' कह दो, इतने से ही करुणामयी कृपा कर देंगी । केवल 'रा' ही क्यों कहा जाऐ तो किशोरी अलीजी आगे कहते हैं – **'रा के कहे रोग सब मिटिहैं'** सबसे बड़ा और अतिशय भयावह रोग है भवरोग, भवरोग जितने भी हैं, जितनी भी इनकी शाखायें हैं, वे सब मात्र आधे अक्षर 'रा' के उच्चारण से ही भस्म हो जायेंगे । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश आदि समस्त पञ्च क्लेश 'रा' के उच्चारण मात्र से समाप्त हो जाते हैं, इनका कोई अस्तित्त्व ही नहीं रह जाता । **'धा के कहे मिटै भवबाधा ॥'** 'धा' कहने पर तो समस्त भव-बाधाओं का समूल विनाश हो जाता है । **'जुग अक्षर की महिमा को कहै'** युग अक्षर 'राधा' की महिमा तो अवर्णनीय है । राधानाम की अचिन्त्य महिमा को न तो अनन्त कोटि

ब्रह्माण्डाधीश्वर श्रीकृष्ण कह सकते हैं और अनन्त ब्रह्माण्ड तथा उनके परे अनन्त भगवद्धामों में भी इस महिमा को कहने वाला न कोई है, न आज तक कोई पैदा हुआ, न भविष्य में भी कोई होगा । **'गावत वेद-पुराण अगाधा ।'** फिर भी जीवों के कल्याण के लिए वेद-पुराणों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार राधा नाम की अगाध महिमा का गायन किया है । **'अली किशोरी नाम रटत नित, लागी रहत समाधा ॥'** श्रीकिशोरीअलीजी कहते हैं कि मैं अपनी जिह्वा से सदा राधा नाम रटता रहता हूँ और ऐसा करने पर निर्विकल्प समाधि से भी श्रेष्ठ प्रेम की समाधि लग जाती है । समाधि दो प्रकार की होती है – सविकल्प एवं निर्विकल्प । सविकल्प समाधि आठ प्रकार की होती है तथा निर्विकल्प समाधि तो केवल एक ही प्रकार की होती है । 'राधा' नाम ग्रहण करने पर समाधियों के तथा अन्य समस्त प्रकार के भेद समाप्त हो जाते हैं । इसलिए केवल 'राधा' नाम रटो और कोई साधन मत करो, 'राधा' नाम से ही सहज में सम्पूर्ण प्रकार की समाधियों की परिपूर्णतम अवस्था प्रेम-समाधि की उपलब्धि हो जाती है । अतः प्रेम से गाओ – **राधा राधा राधा राधा राधा राधा ...**

राधे राधे राधे राधे राधे राधे राधे...

एक बार मैंने सन्त शिरोमणि अनन्यब्रजनिष्ठ अपने बाबा श्रीप्रियाशरणजी महाराज से कहा – 'महाराजश्री ! आप मुझे मन्त्र प्रदान कीजिये क्योंकि यह परम्परा है । ' मेरी बात सुनकर पूज्यमहाराजश्री ने कहा – 'यह परम्परा हमारे यहाँ नहीं है । ' मैंने पूछा – 'ऐसा क्यों ? क्या आप वैष्णव परम्परा को नहीं मानते हैं ?' महाराजश्री ने उत्तर दिया – 'हमारी तो एक ही परम्परा है – **"परम धन राधा नाम अधार । जाहि श्याम मुरली में टेरत निशदिन बारम्बार ॥"** श्यामसुन्दर अहर्निश राधा नाम रटते रहते हैं, एक पल को भी उन्हें अवकाश नहीं है । **"जन्त्र - तन्त्र अरु वेद मन्त्र में, यही कियो निरधार ।"** श्रीबाबाप्रियाशरणजी महाराज ने आगे कहा – 'यही कारण है कि हम लोग राधा नाम के अतिरिक्त और किसी नाम अथवा मन्त्र का जप नहीं करते हैं । तुम भी राधा नाम का जप करो ।' मेरे इन सद्गुरुदेव महाराज का अखण्ड रूप से राधा नाम जप होता रहता था । मैंने इस बात को स्वयं अपने नेत्रों से देखा है कि निद्रा के समय भी उनकी जिह्वा से स्वाभाविक रूप से राधा नाम का उच्चारण होता रहता था । मैं स्वयं तो इतनी उच्चतम अवस्था तक अभी न पहुँचा हूँ किन्तु ऐसे अनन्य राधानामाराधक महापुरुष का मैंने दर्शन अवश्य किया है, उनका उच्छिष्ट प्रसाद पाया है और इतने से ही मैं सन्तुष्ट हूँ ।

.....

बीस कोस वृन्दाविपिन, पुर वृषभानु उदार ।
तामें गहवर वाटिका, जामें नित्य विहार ॥

'श्रीराधामाधव के अन्तरंग एकान्तिक लीलाविहार का रसास्वादन करना' रसोपासना की सबसे बड़ी उपलब्धि है । श्रीप्रिया-प्रियतम के दिव्य प्रेमरसलीला का अवलोकन-आस्वादन तो बहुत दूर की बात है, जो शिव-शुकादि महाभागवतों के ध्यान में भी नहीं आती; फिर वेदोपनिषद् की सामर्थ्य ही कहाँ उस सुदुर्लभ परम गुप्त श्रीयुगलरस के वर्णन करने की । प्रेमामृतमाधुर्य रस से भरे हुए नित्य किशोर-किशोरी का प्रेमरस इस धराधाम (श्रीब्रजमण्डल) में नित्य निरन्तर बरसता रहता है; वही रूप-रस की संप्राप्ति के लिए श्रीरसिकजनों के नेत्र निरन्तर लोलुप रहते हैं ।
(श्रीराधासुधानिधि के श्लोक - ७५, ७६ का गूढ़ार्थ)

बाबाश्री का भावोद्बोधन –

"सभी प्रकार के सत्संग-कथा का सार नित्य लीला विहार भूमि 'श्रीगह्वरवन' में हो रहे श्रीराधिका के अन्तरंग लीला का रस 'श्रीराधारस' है, जो एकमात्र उन्हीं (श्रीजी) की कृपा से मिलता है ।"

सच्चे संतों की सतत् सन्निधि जीवन में अति आवश्यक है, जिनकी परम पावनकारी वाणी के सुनने व मनन-चिन्तन करने से सहज ही विशुद्ध भक्तिपथ का अनुगमन होने लगता है और जीव का परम कल्याण हो जाता है; उसके भक्ति-प्रभाव से पिछली कई पीढ़ियों का भी उद्धार हो जाता है ।

'राधा नामाराधन' से रसमयी सिद्धि सहज

मुरली को गुरु के रूप में श्रीकृष्ण शिक्षा दे रहे हैं कि मुरली तू इस राधा नाम की आराधना कर । तेरे अंदर शक्ति आ जायेगी । राधारानी रस की सीमा हैं और रस की पराकाष्ठा हैं । मैंने तुमसे इतना प्यार क्यों किया? मुरली, मैं तुझे अपने होठों से क्यों लगाता हूँ क्योंकि तू राधे-राधे रटती है । इसलिए मैंने तुझे इतना सम्मान दिया । श्रीकृष्ण वंशी में ये ही गाते हैं और कुछ नहीं गाते हैं । ये प्रमाण है । वंशी ने यही 'क्लीं' बीज मन्त्र गाया था, 'क्लीं' राधा नाम का बीज मन्त्र है ।

श्रीकृष्ण यमुना किनारे चले जाते हैं और किसी एकान्त कुञ्ज में साधन करते हैं, ये श्रीकृष्ण का भजन है । रासपंचाध्यायी में ३२ वें अध्याय का २१ वाँ श्लोक है । भगवान् कैसे राधारानी का भजन करते हैं? यमुना किनारे किसी एकांत में चले जाते हैं, वहाँ बैठकर राधारानी के चरणों का ध्यान करते हैं, आँखों में आँसू भरके 'राधा-राधा' जपते हैं ।

आराधना करो तो इष्ट खिंचता है, आता है । 'राधा' नाम रटोगे तो राधारानी सम्मोहित होकर के आयेंगी । दो अक्षर वाले जिस 'राधा' नाम को श्रीकृष्ण रटते रहते हैं, वह यदि हमारे ध्यान में भी आ जाय तो सबसे बड़ा सहारा मिल जाय । श्रीकृष्ण का भी एकमात्र सहारा 'राधा नाम' है । इस परमतत्व को जानना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है । ब्रह्म ज्ञान के बारे में भगवान् ने गीता में कहा है –

भक्त्यामामभिजानाति.....विशतेतदनन्तरम् ॥

(श्रीगीताजी १८/५५) तुम ब्रह्म रूप हो जाओगे पर मेरे रस रूप को नहीं जान पाओगे । ब्रह्म रस के आगे भी कोई रस है और वो है भक्ति रस । वह भक्ति रस राधारानी ही देने वाली हैं । धन्य हैं श्री राधारानी के चरण जिनमें श्रीकृष्ण हर क्षण गिरते हैं । जितने साधन हैं हम उनको नहीं जान सकते, हम अन्धे हैं, अन्धा क्या देखेगा और क्या जानेगा ? लेकिन एक बात है । अन्धे की लकड़ी सा, राधा नाम हमारा है । भागवत में कहा है कि भगवान् के चरणों का आश्रय ले लो – **मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य.....निवर्तते भीः ॥** (श्रीभागवतजी ११/२/३३) अन्धे बन जाओ, आँख बंद कर लो । जो होशियार बनते हैं बनने दो, जो आँखे खोलते हैं खोलने दो, पर तुम आँखें बंदकरके दौड़ जाओ, तुम पार हो जाओगे । ऐसे अन्धे बनना कि केवल लकड़ी का सहारा हो । इसलिए हम ऐसे ही अन्धे हैं, आँख बंद कर लीं हैं और दौड़ रहे हैं, न लड़खड़ायेंगे और न गिरेंगे । तुम आँख खोले हुए गिर जाओगे और हम अन्धे होते हुए भी पार हो जायेंगे । ये हमने भागवत से प्रमाण दिया, अब राधासुधानिधि से भी प्रमाण दे रहे हैं । जो श्रीजी के नाम और चरणों के आश्रित होते हैं उनके लिए वेदों के कर्म करन या न करना, विषयों को ग्रहण करना या न करना कोई मायने नहीं रखता । इसलिए आँख बंद करके दौड़ जाओ और एक दम सौ प्रतिशत अन्धे बन जाओ । जो वेदों में गुप्त बात थी वो मिल गयी है । अनादिकाल से हमको ये गुप्त बात पता नहीं चली क्योंकि अगर ये बात मिल जाती तो अब तक हम प्रभु के पास पहुँच जाते । नहीं पता चला तभी तो भटक रहे हैं । ये बात तो श्रीजी के जनों के पास जाकर ही पता चलती है । अब हमें किनारा मिल गया है । (राधा ! राधा !! राधा !!!)

जब भी प्रभु से प्रार्थना करो या बात करो तो इस प्रकार करो कि वह तुम्हारे सामने खड़े हैं । प्रभु तुम्हारे सामने खड़े हैं, इस बात का विश्वास रखो । जो भी बोलो, भाव के साथ बोलो । खुले मन से बोलो । प्रभु में डूबकर बोलो कि प्रभु तुम्हारी बात को सुन रहे हैं, प्रभु तुम्हें देख रहे हैं । कोई क्या कर रहा है और क्या कह रहा है, उधर ध्यान मत दो । मन को एकाग्र करके प्रभु से प्रार्थना करो ।

हे नाथ ! मैं आपके गुणों की गाथा सुनकर आपके पास आया हूँ, मैंने सुना कि आप पतित-पावन हैं । मैं भी आज अपनी किस्मत अजमाने आपके पास आया हूँ । मैंने सुना है कि आप भक्ति-भाव से रीझते हैं परन्तु मेरे पास तो न भक्ति है और न ही भाव है । मैंने सुना है कि लोग आपको सत्कर्मों से रिझाते हैं परन्तु मेरे पास तो न अच्छे कर्म हैं और न ही अच्छा स्वभाव है । मैंने तो हर पल भोगों में काटा है । मेरे पास तुम्हें रिझाने के लिए कुछ भी नहीं है । मेरे पास सुंदर मन भी नहीं है । मेरे पास दान देने को धन भी नहीं है । मेरा तो कोई भी ठौर-ठिकाना नहीं है । मेरे पास कुछ भी नहीं है परन्तु एक बात है, वो भी पता नहीं

कहाँ से आ गयी? पता नहीं मैं आपसे निष्कपट कैसे हो गया? मैंने आपसे कुछ नहीं छिपाया, जो जैसा है वैसा ही मैंने आपके सामने रख दिया है । मेरी सब तरफ से बात बिगड़ी है परन्तु एक तरफ से बन गयी । मैं आपके सामने निष्कपट हो गया और मैंने सुना है कि आपके सामने निष्कपट होते ही सब पाप जल जाते हैं ।

हे नाथ ! अनादिकाल से मैं प्यासा जगह-जगह पानी माँगता फिर रहा हूँ । मैं कहाँ-कहाँ नहीं भटका ? कभी परिवार वालों के पास, कभी दोस्तों के पास, कभी रिश्तेदारों के पास; किन्तु कोई भी मेरी प्यास नहीं बुझा पाया । वे सब तो मेरे से भी ज्यादा प्यासे निकले । वे तो उल्टा मेरे से जल माँगने लग गये । मैं उनके पास प्रेम की इच्छा से व सुख की इच्छा से गया था परन्तु वे तो मेरे से भी ज्यादा अंधे निकले ।

हे प्रभो ! मेरा कुछ तो उपाय कर दो । मैं इस छलिया संसार में प्यासा भटक रहा हूँ । आप सिर्फ एक बार मुझे देख लोगे, सिर्फ एक बार मुझे निहार लोगे तो मैं हारा हुआ भी जीत जाऊँगा । हे नाथ ! जैसे मछली के लिए जल ही जीवन होता है, वैसे ही मेरे लिए आपका नाम जल है । मैं इस संसार में एक दीन मछली हूँ, जो सिर्फ आपके नाम के सहारे जी रही हूँ । मछली तो फिर भी बिना जल के जी सकती है परन्तु मैं आपके नाम के बिना नहीं जी सकता । अगर मैं आपसे झूठ बोल रहा हूँ तो आप मेरी जीभ काट देना । मेरा आपके सिवा कोई भी नहीं है । आप कृपा करके मेरी ओर एक बार बस निहार लो । हे प्रभो ! माया में फँसा जीव इस भवसागर से कैसे पार हो सकता है? हमारे पास न कोई ज्ञान है और न ही कोई भक्ति है । हमारे पास तो केवल एक ही सहारा है, वो सहारा आपकी कृपा है । आपकी कृपा से ही हमारी नैया पार लग सकती है । जैसे एक बालक के लिए माँ की गोद ही सब प्रकार से शरण होती है, वैसे ही हमारे लिए आपकी कृपा की गोद ही एक मात्र शरण है । हम इसके अतिरिक्त कुछ न ही जानते हैं और न ही जानना चाहते हैं । हम तो केवल आपकी कृपा की बाट निहारते हैं । हे दीनानाथ ! अगर आप मेरे गुणों की ओर देखोगे तो कभी भी कृपा नहीं कर पाओगे । अगर आप मेरे अच्छे कर्मों की ओर देखोगे तो आप पतित-पावन कैसे कहलाओगे ? ऐसा कोई भी पाप या अपराध नहीं है जो मैंने नहीं किया । हे पापनाशन दीनबन्धो ! आप उधर की तरफ से आँखें बंद कर लें, तभी मेरा कल्याण हो सकेगा । आप तो दीनों के नाथ हैं, मुझे भी अपनी दया दिखाइये । हे कृपानिधान ! मैं तो आपकी शरण में आया परन्तु काम, क्रोध अभी भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रहे हैं; हे नाथ ! मुझे इनसे बचाओ । मुझे अपनी निज कृपा-शक्ति दिखाओ । जैसे सूर्य और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही राम और काम एक साथ नहीं रह सकते । हे प्रभो ! मैं तो तेरे सहारे हूँ, मुझे इन काम, क्रोध से बचा लो । मेरे हृदय में ऐसा दर्द दे दो कि मैं दिन-रात बस तेरे लिए ही तड़फा करूँ । मैं तेरे दर्द में दुनियाँ को तो क्या, अपने आपको भी भूल जाऊँ ? सब लोग अपने को याद रखना चाहते हैं और तुझे भूल जाते हैं । हे दयानाथ ! दया करके मुझे सब कुछ भुलाकर सिर्फ अपनी याद दे दो, अपना दर्द दे दो । प्रेम की राह पर हर कोई नहीं चल सकता । यह राह मोम के घोड़े पर चढ़कर आग में चलने के समान है । ये प्रेम की राह बड़ी टेढ़ी है, इस पर वासना वाले नहीं चल सकते । ये वासना या तो प्रेम को जला देगी या फिर ये प्रेम की आग समस्त वासनाओं को जला देगी । इस प्रेम के रास्ते पर सुंदर फूलों का दर्शन नहीं है, इस रास्ते पर काँटों की शय्या पर सोना होता है; शीतल सुखों की आशा छोड़कर, विरहाग्नि में जलना होता है । विषयों के भोगी तुम दूर से ही भाग जाओ, इस पंथ से बचकर भागना फिर मुश्किल है । जैसे हुनुमानजी ने कहा था कि भजन करना तो दूर, हम जानते ही नहीं कि भजन क्या है ? वैसे ही प्रभु मैं भी कुछ नहीं जानता । बच्चा कुछ नहीं जानता । बच्चा तो इतना करता है कि दौड़कर माँ की गोद में जाकर बैठ जाता है अर्थात् भक्त प्रभु के शरणागत हो जाता है । हे नाथ ! मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, अब आप मुझ पर दया करें । मैं आपके बिना कुछ और नहीं जानता । हे दीनानाथ ! आप मुझ पर अपनी दया बरसायें ।

प्रभु-प्राप्ति का साधन तो मुझे मालुम नहीं तो प्रभु कैसे मिलेंगे ? जब कोई साधन ही नहीं जानता तो सिद्धि कैसे मिलेगी ? जो व्यक्ति समझता है कि हम साधन करना जानते हैं, वह अनजान है । ये बात हनुमान जी ने भी कही

कि जितने भी संसार में जीव हैं, उनमें से केवल मैं ही एक ऐसा हूँ जो साधन-भजन कुछ नहीं जानता हूँ । सच्चे संत भी यही कहते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता । हरिदासजी भी कहते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ । गोसाईं तुलसीदासजी भी यही कहते हैं कि "मैं हरि साधन करी न जानी ।" हम जैसे लोग भागवत-वक्ता बनते हैं लेकिन जानते कुछ नहीं हैं । कोई अन्धेरे में जा रहा था उसे एक रस्सी मिल गयी, वह बोला – अरे, ये तो सर्प है, काला नाग है, हथियार लाओ, बड़ा भारी सांप है । बड़ी मोटी रस्सी थी, सब पीटने लगे उसको पर वो मर ही नहीं रहा । ये मरेगा नहीं, तुम मर जाओगे पर ये नहीं मरेगा । विचार व विवेक के बिना रस्सी रूपी साँप को सत्य मान लिया है, वैसे ही जीव शरीरों में सुख मानकर वासनाओं में आसक्त रहता है । तुम मरोगे पर साँप नहीं मरेगा । हम उल्टा साधन करने लग गये, रस्सी को मारने लग गये । इस तरह से बल की शक्ति का भी विनाश कर लिया । गलत साधन में ही जीवन चला जाता है; हम लोग अभी साधन ही नहीं समझे हैं ।

श्रीराधाराधक 'कृष्ण'

श्रीकृष्ण के मन में इच्छा हुई कि हम भी आराधना करें, भजन करें लेकिन किसका भजन करें? उनसे बड़ा कौन है? तो श्रुतियाँ कहती हैं कि स्वयं ही उन्होंने अपनी आराधना की । ऐसा क्यों किया ? क्योंकि वह अकेले ही तो हैं तो किसकी आराधना करेंगे । अतः श्रुतियाँ कहती हैं कि कृष्ण के मन में आराधना की इच्छा प्रगट हुई तो श्रीकृष्ण ही राधारानी के रूप में प्रगट हो गये । इसीलिए मान आदि लीला में श्रीकृष्ण 'राधारानी' के चरण पकड़ते है तो ये विशेष प्रेम की लीला है । राधारानी को तो छोड़ दो, वे तो उनका ही रूप हैं, उनकी ही आत्मा हैं । भगवान् कहते हैं – **निरपेक्षं मुनिं शान्तं.....पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥** (श्रीभागवतजी ११/१४/१६) तुम निरपेक्ष हो जाओ तो मैं तुम्हारे भी चरणों के पीछे घूमूँगा कि जिससे तुम्हारी चरणरज मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ । भगवान् तो रसिक हैं जो भक्तों के चरणों की रज के लिए उनके पीछे दौड़ते हैं । जब भगवान् भक्तों की चरणरज के लिये भक्तों के पीछे दौड़ते हैं तो राधारानी के चरण पकडें तो इसमें क्या आश्चर्य ? श्रीजी के चरणों में क्या बात है ? श्रीजी के चरणों की ये विशेषता है कि जो संसार में सबसे सुंदर चन्द्रमा है, वैसे एक नहीं, दो नहीं, हजार नहीं, लाख नहीं, करोड़ों चन्द्रमा 'श्रीजी के श्रीचरणों में जो नखमणि है' उनके ऊपर न्यौछावर कर दो । श्रीजी के चरण क्या करते हैं ? जिस समय श्रीजी रास में नृत्य करती हैं तो श्रीबिहारीजी शिष्य बन जाते हैं और श्रीजी गुरु बन जाती हैं । श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे लाड़लीजी ! इस नृत्य की गति को आप हमें सिखा दो । श्रीजी बोलीं - ऐसे नहीं सिखायेंगी, पहले शिष्य बनो । श्रीकृष्ण बोले कि ठीक है, आपको गुरु बनाता हूँ । किशोरीजी डंडा लेकर बैठ जाती हैं और उन्हें सिखाती हैं कि इस तरह से गति लो । **'लाल को नचवन सिखवत प्यारी ।'** जब श्रीजी ने उस तरह से गति लेकर, हाथों की और चरणों की लोच देकर के कटि की भावभंगिमा बतायी तो बिहारीजी बुद्धू बन गये । बिहारीजी की सारी चतुराई चली गयी । स्वामीहरिदासजी ने लिखा है कि सब चतुराई श्रीकृष्ण ने यहीं से सीखी है । आगे कहते हैं कि वे नृत्य की गति इसलिए नहीं सीख पाये क्योंकि वह श्रीजी की छटा ही देखते रहे । अब छटा देखने वाला क्या सीखेगा? उनका ध्यान तो कहीं और था । तो श्यामसुंदर ने कहा कि अच्छा किशोरीजी फिर से एक बार दिखाओ तो किशोरीजी ने फिर से दिखाया । उन्होंने सीख तो लिया होगा क्योंकि वे भी कलानिधान हैं लेकिन सोचा कि एक बार और छटा दिखाई पड़े तो बोले एक बार और दिखाओ, मैं सीख नहीं पाया । श्रीजी ने अब मान कर लिया कि ये कैसे बुद्धू शिष्य मिले । मैं बार-बार सिखाती हूँ और ये सीखते ही नहीं । अब लकुट को हाथ में लेकर मान करके बैठ गयीं । गुरु जब शिष्य को डंडा दिखाता है तब शिष्य कायदे से सीखता है । अब बिहारी जी डर के मारे थर-थर काँप रहे हैं, सखियाँ किशोरी जी की ये छटा देखकर आनंदित हो रही हैं । वे बोलीं वाह गुरु जी वाह ! गुरु हो तो ऐसे हों और शिष्य हो तो ऐसा हो । सखियाँ ताली बजाने लग गयीं । अरे, इसी डाँट के लिए ही बिहारी जी बार-बार बरसाने के चक्कर लगाते हैं । व्यासजी कहते हैं कि जिस वृन्दावन में वृषभानु नंदनी के श्रीचरण से प्रेम रस चारों ओर फैल रहा है तुम उसको क्यों नहीं समझते ? व्यास जी कहते है कि (सुभग गोरी के गोरे पाँव ----) राधारानी के

कैसे सुंदर चरण हैं जिनके श्री बांकेबिहारी जी पुजारी हैं । पुजारी जैसे अपने हाथों से श्रीविग्रह की सेवा करता है वैसे ही श्री बिहारी जी इन चरणों को अपने हाथों में लेकर के दिन-रात सेवा करते हैं । सेवा करना अगर सीखना हो तो बिहारी जी से सीखो । ये नहीं कि ठाकुर जी को पधरा दिया और फिर इधर-उधर की बात कर रहे हैं । अपने इष्ट को तो चौबीस घंटे अपने कंठ से लगाकर रखना चाहिए । हाथों में पकड़े रहना चाहिए कि कहीं दूर न चले जाएँ । ऐसी सेवा केवल एकमात्र श्रीकृष्ण ही करते हैं ।

वेद भेद पायो नहीं, नेति-नेति कह वैन ।
ता मोहन सों राधिका, कहत महावर देन ॥

ऐसा ब्रह्म है वो जिसका वेद भी भेद नहीं पा सकते इसलिए वेद बोले – "न इति-न इति" हम नहीं पा सके ।

'कामं तूलिकया करेण.....गतिर्लास्यैकलीलामयी ॥' (श्रीराधासुधानिधि - २०५) राधिकारानी अपने चरणों में उस ब्रह्म को बैठा के कहती हैं कि महावर की रचना करो और वह करने लग जाते हैं । श्रीकृष्ण हाथों में विशेष तूलिका (ब्रश) लेकर के श्रीजी के चरणों में महावर देने बैठ जाते हैं । ऐसी हैं राधिका रानी, जिनके चरणों में बैठकर ब्रह्म श्रीकृष्ण भी महावर की रचना करते हैं ।

वेद में ब्रह्म का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन तो किया गया है किन्तु एक गोपनीय धन को छिपा लिया है । वह गोपनीय धन हैं श्री राधिका रानी; गुप्त रूप से उपनिषदों के भीतर जो विद्या है उनका मूल श्रीराधिका रानी हैं । उन्हीं श्री राधिका के जो दो गोरे-गोरे चरण हैं वही श्रीकृष्ण की गति हैं, सार हैं, जिसको कोई जान नहीं सकता । स्कंधपुराणोक्त श्रीमद्भागवत माहात्म्य में लिखा है कि श्रीकृष्ण अनन्त जीवों की आत्मा हैं और उनकी भी आत्मा हैं श्री राधिका रानी ।

आत्मा तु राधिका.....प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥

(श्रीभागवतमाहात्म्य - १/२२)

सब वेद पुराणों ने यह सार विचारा है ।
प्रभु को वश करने का राधा नाम सहारा है ॥

एक बार सखियों ने विचार किया कि कृष्ण को कैसे वश में किया जाय? तो विचार किया कि बड़ा सीधा उपाय है किसी के सिर पर अभिमंत्रित करके वशीकरण चूर्ण रख दो तो वो तुम्हारे वश में हो जाता है किन्तु ब्रह्म तो स्वतंत्र है वह कैसे वश में हो जायेगा ? वश में जरूर हो जायेगा, उसको भी वश में करने का एक चूर्ण है । ब्रह्मा, शंकर, नारद आदि को भी वह दिखाई नहीं पड़ता, बड़ा दुर्लभ है परन्तु उसको भी वश में करने का एक उपाय है । जहाँ बरसाने में राधिका रानी के चरण पड़ते हैं वहाँ चले जाओ, गहवर वन चले जाओ, मान मंदिर चले जाओ, यहाँ श्रीजी के चरणों में श्रीकृष्ण लोटा करते हैं । यहाँ की रज ले लो । सखियों ने यही किया । **योब्रह्मरुद्रशुकनारद.....राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि ॥** (श्रीराधासुधानिधि - ३) जिसको भी श्रीकृष्ण को वश में करना था उन्होंने श्री राधारानी के चरणों का चूर्ण लेकर श्रीकृष्ण के माथे पर लगा दिया और वो वश में हो गये । यही आप करो और अगर आप वहाँ नहीं जा सकते हैं तो सिर्फ राधारानी के चरणों का स्मरण ही कर लो । इसी से श्रीकृष्ण वश में हो जायेंगे । ये राधा नाम श्रीकृष्ण को वश में कर देता है । क्या राधा नाम में श्रीकृष्ण से अधिक शक्ति है? हाँ, श्री राधा नाम में श्रीकृष्ण से अधिक शक्ति है । श्रीकृष्ण ने अनन्त गोपियों को ही नहीं सारे ब्रह्माण्ड को वंशी से वश में किया था परन्तु उस वंशी को उन्होंने राधा नाम से ही सिद्ध किया था । पुराणों में लिखा है कि महारास करने से पहले श्रीकृष्ण ने राधारानी का आश्रय लिया था, नहीं तो महारास नहीं कर सकते थे ।

भगवानपि ता....योगमायामुपाश्रितः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२९/१) उन्होंने योगमाया का सहारा लिया, योगमाया अर्थात राधिका रानी जो नित्य उनके साथ रहती हैं । श्रीकृष्ण ने मुरली से कहा कि मुरली तुझको मैं वशीकरण मन्त्र सिखाता हूँ; तू इस मन्त्र को सीख ले फिर तू अनन्त कोटि गोपियों को तो क्या, सारे ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु, शिव तक को भी वश में कर लेगी । ये मन्त्र मैं तुमको देता हूँ **"रट री मुरली राधे राधे ।"** ये रसिकों का पद है । मुरली श्रीकृष्ण से बोली कि आप कहते हैं कि मैं 'राधा-राधा' रटूँ तो क्या राधारानी आपसे बड़ी हैं ? भगवान् बोले कि अरी मुरली ! 'राधा' ही मेरा साधन है, 'राधा' ही आराधन है ।

'मन्दिरों' का वास्तविक वैभव 'सत्संग-आराधन'

चौरासी लाख योनियों में अनन्त कष्ट सहते हुए, **जनमत-मरत दुसह दुःख होई** – बारम्बार जन्म-मृत्यु का दुःसह कष्ट पाने वाले जीव को – **'बड़े भाग मानुष तन पावा'** – भगवान् की अहैतुकी कृपा से देवदुर्लभ मानव-देह की प्राप्ति होती है और इसका एकमात्र उद्देश्य है –'भगवान् के चरणकमलों की नित्य-निरन्तर उपासना, सतत् आराधना अथवा अहर्निश उनका भजन-कीर्तन करना ।' मनुष्य का मन भगवान् की स्मृति, उनके चिन्तन एवं उपासना से सतत् युक्त बना रहे, इसके लिए किसी आधार की, किसी आराधना-स्थल की आवश्यकता होती है, जहाँ वह अपने मन को अपने आराध्य से जोड़ सके, अपनी भावनाओं को अपने प्रभु के प्रति निवेदित कर सके, इष्ट के प्रति अपने सुप्त प्रेम को जागृत कर सके । सनातन धर्म में 'भगवान् के आराधना-स्थल' को 'मन्दिर' कहा जाता है । 'भगवान् श्रीकृष्ण' ने अपने प्रिय सखा व अनन्य ब्रजोपासक 'उद्धवजी' के प्रति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में उपदेश करते हुए क्रियायोग का वर्णन कर विस्तारपूर्वक अपनी आराधन-विधि बताई है, जिसमें मन्दिर-निर्माण के सम्बन्ध में भी कहा है –

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् ।

(श्रीभागवतजी ११/२७/५०)

उपासकजन मेरी अर्चा के लिए सुन्दर व सुदृढ़ मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें मेरी प्रतिमा संस्थापित कराएँ ।

मानमन्दिर के नीचे गह्वरवन में श्रीबाबामहाराज की प्राचीन कुटी को तोड़कर वहाँ नृत्य-आराधन के लिए विशाल आराधना-भवन 'रस-कुञ्ज' का निर्माण करवाया गया था; कुछ लोग जो उसके महत्त्व को नहीं समझते थे, वे आलोचना करने लगे । किसी व्यक्ति ने श्रीबाबा से कहा कि महाराज ! बने बनाये स्थान को तोड़ दिया गया और नये संकीर्तन-भवन को बनाने के लिए बहुत अधिक धन का व्यय किया जा रहा है । श्रीबाबा ने उन व्यक्ति से तो कुछ नहीं कहा परन्तु उन्होंने सार्वजनिक सत्संग के समय कहा कि कुछ लोग 'भगवान् की आराधना' का महत्त्व नहीं समझ सकते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में पैसा बहुत बड़ी चीज है, मन्दिर (आराधना-स्थल) नहीं है; ऐसे लोगों के अन्दर विवेक-शक्ति अथवा श्रद्धा-भक्ति नहीं है ।

बरसाने में 'श्रीजी का मन्दिर' छः बार बना है । पाँच बार तो वर्तमान-स्थल के बगल से हटकर जो स्थान है, वहाँ बना और जो वर्तमान मन्दिर है, इसको बाबाश्री ने ही बड़ा करवाया, मन्दिर का जो बहुत बड़ा हॉल है, उसे इसलिए बनवाना पड़ा क्योंकि एक बार किसी उत्सव के समय भीड़-भाड़ में भगदड़ के कारण एक बुढ़िया की मृत्यु हो गयी थी । उस समय गोस्वामी-समाज के सामने श्रीबाबा ने ही मन्दिर को बड़ा करने का प्रस्ताव करते हुए सबके सामने कहा कि साधारण से उत्सव में भीड़ के कारण बेचारी वृद्धा की मृत्यु हो गयी तो भविष्य में आगे चलकर राधाष्टमी जैसे बड़े-बड़े पर्वों के समय अपार जनसमूह के मन्दिर में आने पर क्या स्थिति होगी ? उस समय भी कुछ लोग धन के व्यय को लेकर हिचकिचा रहे थे, उन्हें लगता था कि इतना पैसा कहाँ से आयेगा ? (बाबामहाराज ने तो कभी अपने पास एक पैसा भी नहीं रखा) फिर भी किसी ने उस समय 'बाबा' को पाँच रुपये भेंट किए तो उन्होंने वही तुच्छ द्रव्य गोस्वामी समाज के सामने रखते हुए कहा कि श्रीजी के मन्दिर को बड़ा करने के इस परम पुनीत कार्य के लिए सर्वप्रथम मेरी ओर से इस नगण्य योगदान को स्वीकार करें एवं श्रीजी की कृपा का आश्रय लेकर इस कार्य का आज से ही श्रीगणेश किया जाता है । श्रीजी की कृपा से मन्दिर को बड़ा किया गया, जिसमें करोड़ों रुपये का व्यय हुआ ।

'मन्दिर' माने 'आराधना-स्थल'; जब जतीपुरा में महापुरुषों की प्रेरणा से गिरिराज 'गोवर्धन' के ऊपर श्रीनाथजी के मन्दिर का निर्माण आरम्भ हुआ तो इसके लिए शिलाओं पर हथौड़े एवं अन्य यंत्रों के प्रयोग की आवश्यकता थी । गिरिराजजी, उनकी शिलायें साक्षात् भगवान् हैं, उन पर मन्दिर-निर्माण के लिए यन्त्रों के आघात को लेकर वैष्णव-समाज अत्यधिक चिन्तित हो उठा । तब स्वयं श्रीभगवान् ने स्वप्न में प्रकट होकर वैष्णवों से कहा कि तुम लोग यह कार्य मेरे लिए कर रहे हो, इसलिए चिन्ता मत करो, मैं प्रसन्न हूँ, अतः मेरी प्रसन्नता हेतु निर्भय होकर

कार्य करो । फिर क्या था, श्रीगोवर्धननाथ की आज्ञा से मन्दिर-निर्माण के लिए गिरिराजजी की शिलाओं पर हथौड़ों व अन्य यंत्रों से आघात किया गया, उन्हें खोदा गया । यह आशंका सर्वथा निर्मूल हो गयी कि ऐसा करने से गिरिराजजी को कष्ट होगा; तदनन्तर, गोवर्धन पर्वत के ऊपर दिव्य श्रीनाथजी के मन्दिर का निर्माण हुआ ।

मन्दिर-निर्माण से श्रीभगवान् अति प्रसन्न होते हैं । श्रीमद्भागवत में भगवान् ने उद्धवजी से कहा है –

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥

(श्रीभागवतजी ११/२७/५२)

मेरी मूर्ति की स्थापना करने से सार्वभौम की व मन्दिर का निर्माण करने से त्रिलोकी एवं पूजा-आराधना करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है तथा तीनों के द्वारा मेरी समानता मिलती है ।

इस तरह आवश्यकताओं के दृष्टिगत छठवीं बार बरसाने में 'श्रीजी के मन्दिर' का निर्माण किया गया । विवेकहीन (नासमझ) लोग ऐसे कार्यों की व्यर्थ ही निन्दा करते हैं, इनको इस बात का पता नहीं है कि कुम्भ मेले के अवसर पर एक करोड़ रुपये तक के तो एक-एक फाटक बनाये जाते हैं और वे भी केवल तीस दिनों के लिए । अरब देशों की मस्जिदों में सोने के पानी की परत लगायी गयी है अर्थात् स्वर्ण निर्मित मस्जिदें वहाँ विद्यमान हैं । दक्षिण भारत के तमिलनाडु प्रान्त में भारत के सबसे बड़े श्रीरंगनाथजी के मन्दिर में स्वर्ण निर्मित विशाल गरुड़ स्तम्भ है । वृन्दावन के श्रीरंगजी के मन्दिर में भी स्वर्ण स्तम्भ पर सोने का पत्थर लगा है । इन सब चीजों के महत्त्व को केवल एक भावुक व्यक्ति ही समझ सकता है और भावहीन व्यक्ति तो व्यर्थ की आलोचना किया करते हैं । भगवान् की आराधना एवं आत्मकल्याण हेतु मन्दिर अर्थात् आराधना स्थल का आश्रय जनसाधारण और उनमें भी अत्यधिक पतित-पामर जीवों से लेकर विशुद्ध सन्तों-भक्तों को भी लेना पड़ता है । श्रीमद्भागवत के अनुसार महाभागवत अम्बरीषजी सप्तद्वीपवती पृथ्वी के एकछत्र सम्राट होने पर भी राज्य-कार्य से सर्वथा उदासीन रहकर मनसा-वाचा-कर्मणा पूर्णतया भगवद्भक्ति के प्रति समर्पित थे । उनकी दिनचर्या के बारे में श्रीशुकदेवजी ने कहा है –

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/१८)

मन, वाणी और इन्द्रियों को भगवान् में समर्पित करने के साथ इस श्लोक में अम्बरीषजी के बारे में एक महत्वपूर्ण बात कही गयी है – 'करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु' सम्पूर्ण पृथ्वी के एकछत्र सम्राट होने पर भी वे स्वयं अपने ही हाथों से भगवान् के मन्दिर में मार्जन-कार्य, जैसे - बुहारी लगाते, भगवान् की सेवा के पात्रों को स्वच्छ करते एवं अन्य सेवाकार्यों को किया करते थे ।

अम्बरीषजी के चरित्र का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने पर पता चलता है कि उन्होंने भगवान् की आराधना हेतु मन्दिर का निर्माण करवाया और अहर्निश मन्दिर में भगवान् की सेवा में ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था । सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि धर्मप्रधान युगों से ही भारतवर्ष में भगवान् की उपासना हेतु मन्दिर के महत्त्व को देखते हुए शास्त्रों में उनकी महिमा का वर्णन किया गया एवं ऋषि-मुनियों, राजर्षियों – भक्त राजाओं तथा जनसाधारण ने मन्दिरों में अनन्य भाव से भगवान् की आराधना की । अधर्म-प्रधान कलिकाल का आगमन होने पर भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में बड़े-बड़े मंदिरों का निर्माण हुआ और इस भीषणकाल में भगवद्धाम से अवतरित आचार्यों, सन्त-महापुरुषों-विशुद्ध भक्तों ने भी भक्ति के वर्धन और उसके प्रचार-प्रसार के लिए देश के कोने-कोने में, विशेषकर धार्मिक स्थानों, तीर्थों और धामों यथा अयोध्या-चित्रकूट एवं ब्रजभूमि में विभिन्न मंदिरों की स्थापना तथा वहाँ स्वयं आराधना करके जनसाधारण के वास्तविक कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया । आदि शंकराचार्यजी के अद्वैत मत का दृढ़तापूर्वक खण्डन करके सम्पूर्ण भारतवर्ष में श्रीसम्प्रदाय के माध्यम से सगुण-साकार भगवान् की भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार करने वाले शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यजी ने मन्दिरों में अर्चा-

विग्रह की शास्त्रीय विधि-विधान एवं आचरण की शुद्धता के साथ 'उपासना' करने पर विशेष जोर दिया, तमिलनाडु में स्थित भारत के सबसे बड़े श्रीरंगनाथजी के मन्दिर की सेवा-पूजा का सम्पूर्ण प्रबन्ध उन्हीं के अधिकार में था ।

'श्रीरंगनाथ भगवान् का मन्दिर' कैसे बना, इसके पीछे भी मामा-भानजे के रूप में दो अनन्य प्रेमी भक्तों की गाथा का वर्णन गोस्वामी नाभाजी ने भक्तमाल में किया है –

आशै अगाध दुहूँ भक्त को हरि तोषन अतिशै कियौ ।
रङ्गनाथ को सदन करन बहु बुद्धि विचारी ।
कपट धर्म रचि जैन-द्रव्य-हित देह विसारी ॥

'मामा-भानजे' – इन दोनों भक्तों के उद्देश्य अतिशय अगाध थे, इन्होंने अपनी अनुपम भक्ति के द्वारा श्रीहरि को विशेष रूप से प्रसन्न किया । 'श्रीरङ्गनाथजी का मन्दिर' बनवाने हेतु इन्होंने अपनी बुद्धि के द्वारा बहुत अधिक विचार-विमर्श किया । विशाल मन्दिर के निर्माण हेतु विपुल धनराशि अर्जित करने के लिए इन्होंने कपट- धर्म का आचरण करके जैनियों के यहाँ से पारस पत्थर की बनी प्रतिमा का हरण किया और इसके लिए मामा ने स्वयं तो अपनी देह का बलिदान कर दिया एवं भानजे को आज्ञा दी कि तुम इस पारस पत्थर की प्रतिमा को लेकर अपार स्वर्ण उत्पन्न करके श्रीरङ्गनाथ भगवान् के अत्यन्त विशाल मन्दिर का निर्माण कराना । अत्यधिक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई, भानजे अपने मामा की आज्ञा से पारसमणि जटित प्रतिमा का हरण कर दक्षिण भारत में कावेरी द्वीप की ओर भागे, जहाँ श्रीरङ्गनाथ भगवान् की प्रतिमा विराजमान थी, किन्तु उन्होंने देखा कि मन्दिर-निर्माण के लिए वहाँ नींव खोदी जा रही थी, भानजे को बहुत दुःख हुआ कि हमारे मामा ने अपनी गर्दन कटा दी, प्राणों का बलिदान कर दिया, अपने प्राणों को संकट में डालकर मैं भी पारस-प्रतिमा का हरण करके ले आया परन्तु यहाँ तो किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा मन्दिर-निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया है तो क्या हम दोनों के प्रयास निष्फल हो गये ? आगे जाकर उन्होंने पता लगाया तो देखा कि उनके मन्दिर-निर्माण कार्य के इस अतुलनीय भावभक्तिपूर्ण प्रयास को प्रभु ने हृदय से स्वीकार ही नहीं किया अपितु ऐसा अभूतपूर्व चमत्कार दिखाया कि मामाजी ही देह-विसर्जन करने के तुरन्त बाद ही अपनी दिव्य देह से पुनः उत्पन्न होकर 'श्रीरङ्गनाथजी मन्दिर' के निर्माण-कार्य में अत्यधिक तत्परता से लगे हैं । भानजे को देखकर मामाजी ने अतिशय प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिंगन किया और फिर तो इन दोनों भक्तों ने पारसजटित प्रतिमा के द्वारा अपार स्वर्ण, अपार धन उत्पन्न करके भारत का सर्वाधिक विशाल मन्दिर बनवाया और उसमें श्रीरङ्गनाथजी को पधराया ।

मन्दिर-निर्माण के लिए 'मामा-भानजे' की यह अनुपम सेवा की गाथा भक्तमाल में सदा के लिए अमर हो गयी है और मन्दिर-निर्माण को लेकर उनकी प्रबल भावना और आत्मसमर्पण से सभी को शिक्षा लेना चाहिए । आगे जब उनके द्वारा निर्मित मन्दिर की सम्पूर्ण सेवा का उत्तरदायित्व श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने ले लिया तो हमें यह भी समझना चाहिए कि मन्दिर का निर्माण केवल भौतिक सामग्रियों-पदार्थों से ही नहीं होता है । चूँकि 'मन्दिर' का अर्थ है – 'आराधना-स्थल' तो मन्दिर में अपने इष्ट की प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा के उपरान्त उनकी उपासना-आराधना किस तरह से की जाए, जिससे कि उपासकों, दर्शनार्थियों को प्रभु की वास्तविक कृपा की प्राप्ति हो, यथार्थ रूप में जनकल्याण हो, इसकी तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । सनातन धर्म के प्रबल बाधक युग (कलिकाल) में भी भारतवर्ष में रङ्गनाथजी के मन्दिर-निर्माण के उपरान्त अगणित मंदिरों का निर्माण हुआ । सबसे भयंकर स्थिति तब आई जब इस्लामिक आक्रान्ताओं ने भारत की राजनितिक सत्ता को अपने नियन्त्रण में लेकर सनातन धर्म के समूल विनाश का अभियान आरम्भ कर दिया । अपने लगभग हजार वर्षों के शासनकाल में बर्बर यवन-शासकों ने अत्यधिक क्रूरतापूर्वक हमारे धर्म, हमारे देशवासियों का कठोरता से दमन किया । उन्होंने सनातन धर्म से जुडी सभी चीजों का विनाश किया, चाहे वे हमारे मन्दिर हों, धार्मिक ग्रन्थ हों, गौमाता हो अथवा धर्मपरायण नागरिक एवं पतिव्रता स्त्रियाँ हों । दुनिया में सनातन धर्म की जनक और इसकी पोषक 'भारतभूमि' में इस्लाम के प्रचारक और संस्थापक नरपिशाचों ने सर्वप्रथम तो हजारों मंदिरों के विनाश के द्वारा ही अपने दुर्दान्त आन्दोलन का सूत्रपात किया । अयोध्या में रामजन्मभूमि पर बने भगवान्

राम के मन्दिर का विध्वंस किया गया, काशी में विश्वनाथ मन्दिर का नाश किया तथा मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि पर तो अनेकों बार बहुमूल्य धातुओं व रत्नों से जटित मन्दिर का नाश हुआ; किन्तु भगवान् की महती कृपा से वर्तमानकाल में देश की सत्ता में परिवर्तन हुआ । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् दीर्घकाल तक भारत और भारतीयता का विनाश करने वाली लुटेरों की राजनीतिक पार्टी चुनाव में बुरी तरह पराजित हुई और अब तक पराजय के पथ पर अग्रसर है । देश में अच्छे नेताओं का शासन स्थापित हुआ और इसीलिए अब अयोध्या में 'राममन्दिर' का निर्माण होने जा रहा है, काशी में भी 'विश्वनाथ मन्दिर के विशाल भव्य परिसर' का निर्माण किया गया है तथा मथुरा की 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि' का मामला भी कोर्ट में चल रहा है ।

हमें ये भी ध्यान देना चाहिए कि कलिकाल में हजारों मंदिरों का निर्माण किये जाने पर भी इस देश के हजारों मन्दिरों का विधर्मियों द्वारा जो विध्वंस किया गया, उसमें उनकी नीचता के साथ कहीं हम लोगों की भी तो कोई गम्भीर गलती नहीं थी, जिसके कारण इतनी विशाल संख्या में हमारे मंदिरों का नाश मुट्ठी भर विदेशी हमलावर कर गये । स्थिति का गंभीरतापूर्वक आकलन करने पर ज्ञात होता है कि सनातनी हिन्दू-समाज की भी गम्भीर त्रुटियाँ थीं । एक तो यह कि जितने भी हमारे देश के मन्दिर तोड़े गये, उनमें सोने-चाँदी ही नहीं अपितु बहुमूल्य रत्नों, हीरे-मोती और मणियों की भरमार थी । यही कारण था कि मंदिरों को तोड़कर उनसे प्राप्त हुई बहुमूल्य सम्पदा सोना, चाँदी, हीरे-मोती और मणियों को ऊँटों व खच्चरों पर लादकर अरब देशों में पहुँचाया गया । इसके अतिरिक्त हिन्दू-समाज में एकता नहीं थी । मुस्लिम शासकों के विरुद्ध जिन हिन्दू राजाओं ने युद्ध किया तो उनमें पारस्परिक फूट बहुत थी । उस समय देश में मराठा, राजपूत एवं जाट राजाओं ने मुस्लिम राजाओं के साथ डटकर मुकाबला किया परन्तु उनमें परस्पर एकता का अभाव था, आपसी द्वेष के कारण सम्पूर्ण देश के राजा एकता के सूत्र में बँधकर, संगठित नहीं हो सके और विदेशी यवन-शासकों ने इसका लाभ उठाया तथा हमारे देश से 'सनातन धर्म' को उखाड़ फेंकने के प्रयास में मंदिरों और उनमें स्थापित भगवद्-प्रतिमाओं को नष्ट करने का सब प्रकार से प्रयत्न किया । हमारे भागवतधर्म का ह्रास अवश्य हुआ लेकिन विनष्ट किसी भी काल में नहीं हुआ क्योंकि इसके संरक्षण-संवर्द्धन के लिए स्वयं श्रीभगवान् अनेकों रूपों में अवतरित होते रहते हैं । भारतभूमि सदा से ऋषि-मुनि-संत-भक्तजनों की भजनाराधन स्थली रही है, इसलिए यहाँ की सनातन परम्परा का समूलतः कभी भी विनाश नहीं हो सकता है ।

वर्तमान में परमपूज्य श्रीबाबामहाराज ने भी दिव्य-भव्य 'श्रीमानमन्दिर' के सुनिर्माण का संकल्प लिया है, जो सम्पूर्ण संसार के लिए परम कल्याणकारी सिद्ध होगा क्योंकि मानमन्दिर में बाबाश्री के सत्संग-सुधा से केवल ब्रज में ही नहीं, अखिल विश्व के जीव-जगत को विशुद्ध भक्ति की प्रेरणा प्राप्त हो रही है, जिससे जन-जन को निष्कामभाव से श्रीब्रजसेवाराधना करने का सम्यक् सुलाभ सहज हो रहा है ... ।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,

GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd

A/C – 915010000494364

IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,

MOB. NO. – 9927916699

'श्रीनामाराधना' से धाम-स्वरूप का प्राकट्य

'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' में बाबाश्री द्वारा कथित सत्संग (१७/११/२०१३) से संकलित

श्रीकृष्ण इतने सरल हैं कि ब्रज के गाँवों में गँवार बन जाते हैं, जिनके चरणकमलों की सेवा स्वयं वैकुण्ठ की अधीश्वरी लक्ष्मीजी किया करती हैं । ब्रज में श्रीकृष्ण की इतनी सरल लीलायें हैं कि वे भगवान् अनन्त हैं, आज तक उनको कोई बाँध नहीं पाया परन्तु उन अनन्त भगवान् को यशोदा मैया ने रस्सी से बाँध दिया –

"कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने" (श्रीभागवतजी १०/९/१८)

प्रेमरसमयी ब्रजभूमि में 'भगवान्' भी अपनी भगवत्ता को भूलकर अत्यन्त सहज-सरल स्वभावमय बन जाते हैं –

"रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ।" (श्रीभागवतजी १०/१५/१९)

यहाँ 'ग्राम्यैः' शब्द का अर्थ है गँवारों का साथ । प्रेमभूमि ब्रज में अनन्त महिमाशाली भगवान् गँवारों के साथ ग्रामीण चेष्टायें करता है अर्थात् स्वयं भी गँवार बन जाता है, चोरी करता है, ग्वालबालों का उच्छिष्ट (जूठन) खाता है । इस प्रकार जितनी भी गँवारपने की लीलायें भगवान् करता है तो कहाँ करता है ? जिस स्थली पर ऐसी मधुरातिमधुर रसमयी-प्रेममयी लीलायें करता है, उसी सुरमुनि वन्दित पावन धरा का नाम है ब्रज । जिस भगवान् के बारे में उपरोक्त श्लोक में कहा गया है – **'रमालालितपाद पल्लव'** लक्ष्मीजी उसके चरणों को दबाती नहीं हैं, लालन करती हैं, सहलाती हैं, वे भगवान् इस तरह प्रीतिपूर्वक चरण संवाहन करने वाली लक्ष्मीजी का त्यागकर ब्रज में गँवारों के साथ रमण कर रहे हैं । श्रीवृन्दावन महिमामृत शतक के रचयिता श्रीपाद प्रबोधानन्दजी ने अपने ग्रन्थ में बताया है कि यह ब्रज वृन्दावन धाम कैसा है ? 'श्रीमद्वृन्दावनभुविमहानन्दसाम्राज्यकन्दे' – परमानन्द, महा आनन्द के साम्राज्य का मूल है यह ब्रज । 'वन्दे यं कञ्चन विरचिता मृत्युवास प्रतिज्ञम्' – उसकी हम वन्दना करते हैं, जो यहाँ निष्ठापूर्वक निवास करता है, निष्ठा वाला ब्रजभक्त इसी ब्रजभूमि में अपना जीवन समाप्त करता है । हजारों-लाखों लोगों में कोई एक ही ब्रज के प्रति ऐसा आस्थावान होता है, जो इस प्रकार मृत्युपर्यन्त अखण्ड ब्रजवास करता है । हमारे सामने जो ब्रज दिखायी पड़ता है, उसमें तो मिट्टी ही मिट्टी है; यहाँ स्थान-स्थान पर मल-मूत्र का प्रदूषण भी दिखायी पड़ता है । यहाँ ऐसा क्या है, जो एक दृढ़ निष्ठायुक्त ब्रजभक्त मृत्यु वास की प्रतिज्ञा लेकर यहाँ रह रहा है । वृन्दावन शतककार प्रबोधानन्दजी कहते हैं कि स्थूल दृष्टि से दिखने वाले इस भौम वृन्दावन में ऐसी शक्ति है कि यहाँ पर नित्य धाम का अवतार होता है । जिस प्रकार भगवान् का अवतार होता है, उसी प्रकार धाम का भी अवतार होता है । ऐसा क्यों होता है तो इसका कारण यही है कि जिस प्रकार भयंकर भवाटवी में भटकते हुए पतितात्माओं पर अनन्त करुणावरुणालय भगवान् कृपावश धराधाम पर अवतरित होते हैं, ठीक इसी प्रकार धाम का अवतरण भी दारुण भवसिन्धु में गोता खा रहे मायाबद्ध जीवों पर कृपा करने के लिए होता है । जो लोग ब्रजधाम में आते हैं और मौजमस्ती करके अथवा तफरी करके चले जाते हैं, उनकी बात अलग है, अन्यथा जो लोग यहाँ निष्ठापूर्वक अखण्ड वास करते हैं, उनके बारे में वृन्दावन शतककार लिखते हैं – **श्रीमद् वृन्दावन भुवि महानन्द साम्राज्य कन्दे वन्दे यं कञ्चन विरचिता मृत्युवास प्रतिज्ञम् । श्रीगान्धर्वारसिकतिलकौ स्वेषु योग्यं यमेकम् ज्ञात्वान्योन्यं विमृशत इदं कीदृशोन्वेष भाव्यः ॥**

(श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् - ६/३५)

'गान्धर्वा' का अर्थ है - श्रीराधारानी, 'रसिकतिलकौ' का अर्थ है - श्रीकृष्ण । जब ये दोनों युगल सरकार बैठते हैं तो मृत्युपर्यन्त अखण्ड ब्रजवास की प्रतिज्ञा लेकर यहाँ रहने वाले उस दृढ़निष्ठ ब्रजभक्त की परस्पर चर्चा करते हैं और कहते हैं कि वह अनन्य भक्त जो हमारे धाम में पड़ा हुआ है, जिसने अपना जीवन धाम के लिए समर्पित कर दिया, उसका क्या हाल-चाल है ? भगवान् की शरणागति, धाम की शरणागति एक ही है । नाम, धाम, रूप, गुण, लीला, जन, धामी – ये सातों तत्त्व एक ही हैं । नामनिष्ठ हो जाओ, तब भी वही फल मिलेगा, रूपनिष्ठ हो जाओ, लीलानिष्ठ हो जाओ, जननिष्ठ हो जाओ अथवा धामनिष्ठ हो जाओ, इन

सबका समान महत्त्व है । इसलिए राधारानी और श्यामसुन्दर जब एकान्त निकुञ्ज में बैठते हैं तो परस्पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे से विचार करते हैं – राधारानी श्यामसुन्दर से पूछती हैं – 'हे प्यारे ! वह अनन्य ब्रजभक्त, जो हमारे धाम का आश्रय लेकर यहाँ निवास कर रहा है, उसका समाचार मुझे सुनाओ ।' कभी श्यामसुन्दर राधारानी से पूछते हैं – 'हे राधे ! वह जो तुम्हारे धाम में पड़ा हुआ है, क्या तुमको उसकी सुध है ?' श्रीजी कहती हैं – 'हाँ ! मुझे उसकी सुध है ।' धाम में निवास करने का यह फल होता है । इसी प्रकार नामनिष्ठ का यह फल होता है –

"सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें ।
आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥"

रूप नहीं देखा है किन्तु नाम का स्मरण करो तो उस रूप का आविर्भाव हो जाएगा । अब यह विचार करना चाहिए कि इस धाम में काँटे दिखायी देते हैं, कंकड़ दिखायी देते हैं, गली-गली में मल-मूत्र दिखायी पड़ता है तो हम यहाँ श्रद्धा कैसे करें ? यह प्रश्न हमारे समक्ष है । यहाँ चोर-जेबकतरे दिखायी पड़ते हैं, दुराचारी लोग भी दिखायी पड़ते हैं, ऐसी स्थिति में हम धाम के प्रति श्रद्धा कैसे करें ? इसका उत्तर यही है कि ठीक है, धाम में विकृतियाँ दिखायी पड़ती हैं, परन्तु यह हमारी आँखों का ही दोष है, जो हमें धाम में दूषण और दूषित प्रकृति के लोग दिखायी देते हैं, अन्यथा महान ब्रजनिष्ठ सन्त ध्रुवदासजी ने कहा है –

"प्रगट जगत में जगमगै वृन्दा विपिन अनूप ।
नयन अछत दीखे नहीं यह माया को रूप ॥"

नेत्रों की स्थूल दृष्टि होने के कारण हमें धाम का वास्तविक स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता है क्योंकि नेत्रों में माया का आवरण है । यह आवरण कब हटता है ? यह कृपा से हटता है । कृपा कब होती है ? जब अहंता-ममता चली जाती है । एक अन्य प्रमाण यह है कि चित्रकूट में जब भरतजी भगवान् राम से मिलने के लिए गये तो उन्होंने रामजी को वन से अयोध्या वापस लाने का प्रयत्न किया परन्तु रामजी लौटे नहीं । उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं तो पिताजी की आज्ञा से वन में ही निवासकर चौदह वर्षों के पश्चात् ही अयोध्या आऊँगा । उसी प्रसंग में भरतजी ने वहाँ धामोपासना की । धामोपासना क्या है, यह कैसे प्रकट होती है, इसे ध्यानपूर्वक समझें । भरतजी ने कहा कि मुझे चित्रकूट धाम की परिक्रमा करनी है । चित्रकूट भी राम लीला का स्थल और धाम है । जितने भी धाम हैं, ये भगवान् की इच्छा से ही अवतरित होते हैं । क्यों अवतरित होते हैं ? जीवों के कल्याण के लिए ही भगवदिच्छा से इनका अवतरण होता है । जैसे भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं जीवों के कल्याण के लिए । भगवन्नाम क्यों प्रकट होता है, जीवों पर दया करके भीषण भवसागर से उनको उबारने के लिए ही हरिनाम का प्राकट्य होता है । इसी प्रकार भगवान् की इच्छा से जीवों पर दया-कृपा की वर्षा हेतु ही धाम का भी अवतरण होता है । जो भक्त हैं, वे धाम के प्रति भाव रखते हैं । जो भक्त नहीं हैं, वे धाम के प्रति कोई भाव नहीं रखते हैं । धाम के प्रति भाव का उदय कैसे होगा ? धाम के उपासकों के साथ यदि रहा जाये, उनका संसर्ग किया जाये तो धाम की भक्ति अवश्य ही उत्पन्न होगी, अन्यथा नहीं होगी, धाम के प्रति प्राकृत भाव ही बना रहेगा । भरतजी की चित्रकूट की परिक्रमा के प्रति उत्कट लालसा को देखकर श्रीरामजी ने सहर्ष ही उनका अनुमोदन किया, अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी । जब भरतजी चित्रकूट की परिक्रमा को चले तो उनका समस्त परिवार और सम्पूर्ण अयोध्यावासी, जो उनके साथ आये थे, वे भी उनके साथ ही परिक्रमा के लिए चल दिये । उस समय चित्रकूट सघन अरण्य (घनघोर जंगल) था । वहाँ के वातावरण का गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस चौपाई में सटीक चित्रांकन किया है –

"कुस कंटक कांकरी कुराई । कटुक कुवस्तु कठोर दुराई ॥"

जंगल में कुशा थे, जो पाँव में गड़ जाते हैं; काँटे थे, कंकड़ियाँ थीं, जो पाँवों में चुभ जाती हैं और कष्टदायक होती हैं । 'कुराई' अर्थात् ख़राब रास्ते थे, घने जंगलों में रास्ता भूल जाने पर राहगीर को बहुत भटकना पड़ता है । (ब्रज में आने से पहले चित्रकूट प्रवास के दौरान पूज्य श्रीबाबामहाराज को भी एक बार वहाँ मार्ग भूल जाने पर ददरी के जंगल में रात भर बहुत भटकना पड़ा था । लोग कहते थे कि वहाँ सिंहों का बहुत अधिक भय था । अतः एक जगह छिपकर श्रीबाबा महाराज को रात बितानी पड़ी थी । सबेरा होने पर उन्होंने देखा कि हिरन भाग रहे थे और एक सिंह उनका पीछा कर रहा था ।) कुराई 'ख़राब रास्तों' का यह दुष्परिणाम होता है कि मनुष्य अपने मार्ग से भटक जाता है । जंगल में कटुक

वस्तुएँ जैसे किवाच आदि होती हैं । किवाच का यदि शरीर से स्पर्श हो जाये तो खुजली उत्पन्न कर देगी । कुवस्तु का अर्थ है कि जंगल में दूषित वस्तुएँ मल-मूत्र आदि भी स्थान-स्थान पर पड़े होते हैं । कठोर वस्तुएँ जैसे हड्डियाँ भी जंगलों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी रहती हैं । भरतजी द्वारा भाव सहित चित्रकूट धाम की परिक्रमा किये जाने पर वहाँ की धरती ने इन अशुभ, अपवित्र और कष्टप्रद वस्तुओं को छिपा लिया । यह धाम उपासना का ही फल था कि बाधायें आयीं किन्तु धाम की चमत्कारिक शक्ति ने उनको छिपा दिया । काँटे फूल बन गये, कंकड़ियाँ, कुराई, कटुक वस्तुएँ और मल-मूत्र आदि लुप्त हो गये एवं पृथ्वी पर सुन्दर मार्ग का प्राकट्य हो गया ।

सच्ची दीक्षा का स्वरूप 'संकीर्तन में प्रगाढ़ प्रेम'

ऐसा भी नहीं है कि गुरु के द्वारा प्रदान की गयी मन्त्र-दीक्षा का महत्त्व बिलकुल ही नहीं है । मन्त्र-दीक्षा का भी विधान है, जैसा कि चार वैष्णव-सम्प्रदाय के मूल आचार्यों के द्वारा शरणागत भक्तों को गुरु-दीक्षा प्रदान की जाती थी । भक्तमाल में वर्णन है कि श्रीरामानुजाचार्यजी के गुरुदेव ने उन्हें मन्त्र-दीक्षा देते समय आदेश दिया था कि यह परम गोपनीय मन्त्र है, इसे अपने अन्तःकरण में गुप्त रखना, किसी के सामने प्रकट मत करना । गुरु द्वारा प्रदान किये उस मन्त्र के जपने का यह प्रभाव हुआ कि भगवान् ने श्रीरामानुजजी को प्रत्यक्ष दर्शन दिया । परम दयालु श्रीरामानुजाचार्यजी ने सोचा कि जिस प्रकार मन्त्र जप करके मैंने भगवद्दर्शन पाया, उसी प्रकार सभी लोग भगवान् का दर्शन प्राप्त करें । ऐसा विचारकर उसी समय रात में ही आप मन्दिर के गोपुर द्वार पर चढ़ गये और वहीं से उच्च स्वर में मन्त्र का उच्चारण किया ।

जब इनके गुरुदेव को इस बात का पता चला तो वे बहुत अप्रसन्न हुए और इन्हें बुलाकर अत्यन्त क्रोध में भरकर कहा कि तुमने गुरु-आज्ञा का उल्लंघन किया है, इसलिए तुम्हें निश्चय ही नरक में जाना होगा । यह सुनकर रामानुजजी ने बड़ी ही विनम्रतापूर्वक गुरुदेव से कहा कि यदि उच्च स्वर से मन्त्र उच्चारण करने पर उसके श्रवण से अनेक जीव भगवद्धाम को जा सकते हैं तो इसके लिए मैं जन्म-जन्मान्तरों तक नरक में रहने के लिए तैयार हूँ । श्रीरामानुजजी की जीवों के प्रति ऐसी कल्याणमयी भावना को देखकर इनके गुरुदेव का हृदय भाव से भर गया और 'मन्नाथ-मन्नाथ' कहते हुए रामानुजजी को हृदय से लगाकर वे बोले कि जिसके मन में प्राणियों के प्रति ऐसी अपार करुणा है, वे भला कभी नरक में जा सकते हैं ।

रामानुजजी के जीवन की इस घटना से यह पता चलता है कि गुरुदेव के द्वारा प्रदान की गयी मन्त्र-दीक्षा का भी महत्त्व होता है किन्तु इसके लिए गुरु में शास्त्र प्रतिपादित लक्षण होने चाहिए । वैष्णवशास्त्रों में गुरु के जिन लक्षणों का वर्णन किया गया है, उनसे युक्त होने पर ही ऐसे सद्गुरु के द्वारा प्रदान की गयी मन्त्र-दीक्षा वास्तविक फलदायक होती है । इसके साथ ही यह भी पता चलता है कि यदि शिष्य के हृदय में जीवों के प्रति अपार करुणा का भाव है तो वह रामानुजजी की तरह अपने मन्त्र-प्रदाता गुरु से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है ।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी अपने शरणागतों को मन्त्र-दीक्षा के माध्यम से ब्रह्म-सम्बन्ध कराया करते थे । उन्होंने गोवर्धन में श्रीनाथजी के मन्दिर में लीला-गायन के लिए अष्टछाप के वैष्णवों की नियुक्ति की थी । अष्टछाप के इन वैष्णव-कवियों में चार सन्त जैसे सूरदासजी, कुम्भनदासजी, परमानन्ददासजी और कृष्णदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे तथा शेष चार वैष्णव वल्लभाचार्यजी के सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे । अष्टछाप के इन चारों वैष्णव-कवियों को मन्त्र-दीक्षा प्राप्त होने पर भी वल्लभाचार्यजी ने इन्हें विशेष रूप से श्रीनाथजी के मंदिर में लीलागान की आज्ञा दी थी और ये सन्त अपने सम्पूर्ण जीवन में पद-रचना के द्वारा कृष्ण- चरित्र का गायन करते रहे । वल्लभाचार्य महाप्रभुजी ने नित्य धामगमन के पूर्व अपने सम्प्रदायानुयायियों को भोग और ऐश्वर्य के सेवन अर्थात् इन्द्रियतोषण से स्पष्ट रूप से बचने की आज्ञा दी थी और यह चेतावनी भी दे दी थी कि यदि भगवत्कथा और ठाकुर-सेवा से विमुख होकर वे लोग विषयासक्ति में डूब गये तो काल उन्हें नष्ट कर देगा । यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति

है कि श्रीवल्लभाचार्यजी की इस विशेष आज्ञा का पालन न होने के कारण इस सम्प्रदाय के अनुयायियों में धनी वर्ग का प्रचुर बाहुल्य होने के कारण विषयासक्ति बहुत बढ़ गयी है, साथ ही पूर्व में इस सम्प्रदाय का ब्रज में जैसा प्रभाव देखने को मिलता था, आपसी फूट के कारण वह प्रभाव समाप्त-सा हो गया है जबकि इस सम्प्रदाय में गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र-दीक्षा का विशेष विधान है ।

इससे पता चलता है कि विशेष वैष्णव-सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में दीक्षित होने पर भी यदि मूल आचार्यों की वाणी, उनकी शिक्षा का पालन नहीं किया जाएगा तो केवल गुरु द्वारा प्रदान की गयी दीक्षा से भी लाभ नहीं होने वाला है । इसलिए वैष्णव शास्त्रों के अनुसार गुरु के रूप में केवल विशुद्ध भक्त ही मान्य हैं चाहे वे किसी प्रामाणिक सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा के अन्तर्गत हों अथवा न हों; इसके साथ ही ऐसे सच्चे भक्त के सत्संग का सतत् लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए । ऐसे सच्चे संतजन चाहे किसी को अपना शिष्य न भी बनायें तब भी केवल उनकी वाणी, उनके सदुपदेश और उनके कीर्तन से ही सारे विश्व का कल्याण होता है । उदाहरण के लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु तो स्वयं साक्षात् श्रीकृष्ण ही थे और वे एक भक्त के रूप में सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर अपने नगर-कीर्तन के माध्यम से मनुष्य तो क्या, पशुओं तक को भगवत्प्रेम का दान किया करते थे । श्रीचैतन्यदेव किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे, किसी को मन्त्र-दीक्षा प्रदान नहीं करते थे, वे तो केवल हरिनाम-संकीर्तन को ही कलियुग में जीवों के कल्याण का एकमात्र साधन बताकर मुक्त हस्त से उसका वितरण करते थे, वे इस श्लोक को बार-बार कहते थे –

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

इस भीषण कलिकाल में केवल 'हरिनाम' ही मनुष्यों के कल्याण का एकमात्र साधन है और हरिनाम के सिवा किसी अन्य साधन को अपनाने से कल्याण नहीं हो सकता, नहीं हो सकता, नहीं हो सकता । शास्त्र के अनुसार कोई बात जब तीन बार कही जाती है तो वह अकाट्य सत्य होती है, उसका किसी प्रकार खण्डन नहीं किया जा सकता है । इसलिए इस श्लोक में जो नाम की महिमा का त्रिवाचा से उद्घोष किया गया है, इसे चैतन्य महाप्रभुजी बार-बार उद्धृत करते हुए सभी को कृष्णनाम-कीर्तन करने की शिक्षा दिया करते थे । उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि यदि बिना गुरु-दीक्षा के नाम-जप या नाम-कीर्तन करोगे तो उससे कोई लाभ नहीं होगा, जैसा कि आजकल के अत्यन्त ख्याति-प्राप्त सन्त-महात्मा जनसाधारण के समक्ष घोषणा करते हुए उन्हें बारम्बार गुरुदीक्षा लेने के लिए प्रेरित करते रहते हैं । भक्तमाल सुमेरु व श्रीरामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी ने कभी भी अपने ग्रन्थों में या अपने जीवनकाल में ऐसा नहीं कहा कि कल्याण के लिए गुरुदीक्षा अत्यन्त आवश्यक है, उन्होंने तो रामचरितमानस में सर्वत्र भगवन्नाम की महिमा का ही गायन किया है, जैसे – **कलियुग केवल नाम अधारा ।**

सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा ॥
चहुँ जग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ ।
कलि विसेषि नहिं आन उपाऊ ॥

उन्होंने यहाँ तक कह दिया –

नहिं कलि करम न भगति विवेकू ।
राम नाम अवलम्बन एकू ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – २७)

कलियुग में न तो कर्मयोग से कल्याण हो सकता है, न विवेक से और न ही भक्तिमार्ग पर ही कोई चल सकता है; इस युग में तो केवल 'राम नाम' के आश्रय से ही कल्याण सम्भव है । तुलसीदासजी के अन्तिम समय में संतों ने उनसे कुछ उपदेश देने का अनुरोध किया तो उन्होंने यह कवित्त कहा –

अलप तौं अवधि जीव तामें बहु सोच-पोच,
करिबे को बहुत हैं काह काह कीजिये ।
पार ना पुरान हूँ को वेद हूँ को अन्त नाहीं,
बानी तो अनेक चित्त कहाँ-कहाँ दीजिये ॥
काव्य की कला अनन्त छन्द को प्रबन्ध बहु,
राग तो रसीले रस कहाँ-कहाँ पीजिये ।
लाखन में एक बात तुलसी बताये जात,
जनम जौ सुधारा चाहौ राम-नाम लीजिये ॥

वेद-पुराण और शास्त्रों के रहस्य को समझना बहुत कठिन है, उनमें कल्याण के बहुत से उपाय बताये गये हैं, ऐसी

स्थिति में क्या किया जाए ? लाखों में एक महत्वपूर्ण बात यही है कि यदि अपना मनुष्य-जन्म सुधारना चाहते हो तो एकमात्र 'राम नाम' का आश्रय लो ।

इस तरह देखा जाए तो अपने सारे जीवन काल और अन्तिम समय में भी मनुष्यों के कल्याण के लिए गोस्वामीजी ने एकमात्र 'भगवन्नाम जप-कीर्तन' को ही सर्वश्रेष्ठ साधन बताया, उन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा कि नाम-साधन के साथ गुरु-दीक्षा लेना भी आवश्यक है अथवा गुरुदीक्षा के अभाव में किया जाने वाला भजन लगता नहीं है अर्थात् उससे कोई लाभ नहीं होता है ।

ऐसे बहुत से विशुद्ध सन्त होते हैं जो किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते, किसी को गुरु-दीक्षा नहीं देते किन्तु जब भगवान् किसी जीव पर बहुत विशेष कृपा करते हैं तो उसे विशुद्ध सन्त का संग प्रदान करते हैं । इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा है – **संत बिसुद्ध मिलहिं पुनि तेही ।**
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ६९)

विशुद्ध सन्त के सत्संग से ही जीव के हृदय में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का उदय होता है, चाहे वे किसी को अपना शिष्य भले ही न बनायें । उदाहरण के लिए जब पूज्य श्रीबाबामहाराज लगभग ७० वर्ष पूर्व अपनी जन्मभूमि तीर्थराज प्रयाग से श्रीराधामाधव की लीलाओं से सुशोभित ब्रजभूमि में पधारकर साधनामय जीवन व्यतीत कर रहे थे तो उन्होंने भी गुरु की खोज की । ब्रज में उस समय के बहुत से सन्तों के पास श्रीबाबामहाराज अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गये किन्तु उन्हें उस समय श्रीप्रियाशरणबाबा महाराजजी के त्याग-वैराग्यमय एवं भजन परायण जीवन तथा उनकी ब्रज और ब्रजवासियों के प्रति अगाध निष्ठा को देखकर उन्हीं को अपने गुरुदेव के रूप में वरण करने की तीव्र अभिलाषा जागृत हुई । परन्तु श्रीप्रियाशरणजी महाराज किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे । श्रीबाबा से उन्होंने कहा था कि तुम ब्रज में किसी भी सुयोग्य सन्त को अपना गुरु बना सकते हो, उस समय श्रीरमेश बाबा महाराजजी ने उनसे यह कहा कि मेरे हृदय में तो आपको ही अपना गुरुदेव बनाने की प्रबल भावना है । उस समय श्रीप्रियाशरणबाबा महाराज ने श्रीबाबामहाराज से कहा था कि मैं तो किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाता हूँ किन्तु यदि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति भाव है तो ठीक है ... । श्रीप्रियाशरणजीमहाराज को श्रीबाबामहाराज ने हृदय से अपने सद्गुरुदेव के रूप स्वीकार कर लिया और आजीवन उनके बताये सिद्धान्तों का पूर्णरूपेण पालन किया ।

पूज्य श्रीरमेशबाबामहाराज वर्तमानकाल में ब्रज-वसुन्धरा की अत्यन्त अनुपम विभूति हैं । १७ वर्ष की अल्पावस्था में ही उन्होंने अपनी जन्मभूमि का त्यागकर ब्रजभूमि का आश्रय लिया और लगभग ७० वर्षों से वे धाम-धामी की आराधना करते हुए अखण्ड ब्रजवास कर रहे हैं । श्रीबाबामहाराज ने सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में नाम-कीर्तन का प्रचार किया । मान मंदिर से उनके नेतृत्त्व में संचालित की गयी ब्रज चौरासी कोस की यात्रा के माध्यम से उन्होंने ब्रज के सभी गाँवों में ब्रजवासियों को अधिक से अधिक लोगों के लाभ के लिए प्रतिदिन प्रभात फेरी करने के लिए जागृत किया । श्रीबाबा के अनुरोध को सभी ब्रजवासियों ने स्वीकार किया और अब सम्पूर्ण ब्रज में प्रातःकाल ब्रजवासी अपने गाँवों में भ्रमण करते हुए प्रभात फेरी करते हैं । श्रीबाबा ने प्रभातफेरी के लिए सभी गाँवों के ब्रजवासियों को निःशुल्क माइक और ढोलक भी वितरित किये हैं । इसी प्रकार श्रीबाबा द्वारा सन् १९८८ में प्रारम्भ की गयी चालीस दिवसीय निःशुल्क ब्रजयात्रा में प्रतिवर्ष देश-विदेश से पंद्रह हजार से भी अधिक ब्रजयात्री सम्मिलित होकर ब्रजभूमि के दिव्यवास और परम रसमयी श्रीब्रजभक्ति का लाभ उठाते हैं । श्रीबाबामहाराज भी किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते हैं किन्तु उनके द्वारा मनुष्यों के कल्याण के लिए चलाये गये कार्यक्रमों और उनके परम दिव्य सत्संग के द्वारा असंख्य लोगों को ब्रजभक्ति और अखण्ड ब्रजवास का दुर्लभ लाभ प्राप्त हुआ है । श्रीबाबा महाराज के द्वारा धाम-सेवा के अभूतपूर्व कार्यों में ब्रज के अनेकों कुण्डों का जीर्णोद्धार किया गया

है । खनन-माफियाओं के द्वारा बर्बरतापूर्वक नष्ट किये जा रहे ब्रज के पर्वतों का संरक्षण किया गया है । श्रीराधारानी के करकमलों द्वारा निर्मित बरसाने के प्रसिद्ध गह्वरवन का संरक्षण तथा अन्य वनों के संरक्षण एवं वृक्षारोपण के

कार्यक्रम द्वारा ब्रज की वन-सम्पदा के विकास का विशेष कार्य किया गया है । इसी के साथ ही यमुना-आन्दोलन के द्वारा श्रीबाबामहाराज के द्वारा ब्रज में लुप्त हो चुकी यमुनाजी को ब्रज में लाने का प्रयास किया गया है । इसी प्रकार बरसाना में माताजी गौशाला की स्थापना के द्वारा लगभग सत्तर हजार गौवंश के पालन और उनके संरक्षण का भी अत्यधिक प्रशंसनीय कार्य पूज्यश्री के द्वारा किया गया है । श्रीबाबामहाराज अपने पास एक भी पैसा नहीं रखते हैं । ७० वर्ष से अखण्ड ब्रजवास करते हुए बाबाश्री धन के संग्रह से बिलकुल दूर रहते हैं । मानमन्दिर से ब्रज-सेवा, गौ-सेवा और समाज-कल्याण के जितने भी बड़े-बड़े कार्य किये गये हैं, उनके लिए किसी से भी कभी धन की याचना नहीं की गयी और फिर भी सभी कार्य सुचारु रूप से 'श्रीआराधना-शक्ति' से सम्पन्न होते रहते हैं । श्रीबाबामहाराज कहते हैं कि सृष्टि में 'आराधना-शक्ति' ही सबसे बड़ी शक्ति है, जिससे असम्भव कार्य भी सहज सम्भव हो जाते हैं ।

पूज्य श्रीबाबामहाराज यद्यपि किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते हैं किन्तु उनके अत्यन्त अलौकिक गुणों के कारण वे वास्तविक सद्गुरु के रूप में ग्रहण करने योग्य हैं ।

वस्तुतः यह बहुत ही आधारहीन और अशास्त्रीय मत है कि समस्त सद्गुणों से सम्पन्न होने पर भी गुरु-दीक्षा न देने के कारण किसी विशुद्ध सन्त को गुरु के रूप में न ग्रहण किया जाए । वास्तव में देखा जाए तो एक सच्चे सद्गुरु के सारे लक्षण श्रीबाबामहाराज में विद्यमान हैं, इसलिए सभी को बिना किसी संकोच के उन्हें अपने सद्गुरु के रूप में स्वीकार करना चाहिए । हालाँकि श्रीबाबा कभी किसी को ऐसी सलाह नहीं देते कि मुझे गुरु मानो, वे तो सभी से यही कहते हैं कि आजकल का जैसा दूषित वातावरण है, ऐसे कठिन समय में सभी को भगवान् को ही एकमात्र अपना गुरु मानना चाहिए ।

सबसे बड़ा संरक्षक 'श्रीभगवन्नाम'

वसुदेवजी ने नन्दबाबा से कहा – 'अरे नन्दजी ! आपको बड़ी अवस्था में पुत्र पैदा हुआ ।' **दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।**
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत् समपद्यत ॥

(श्रीभागवतजी - १०/५/२३)

इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'प्रवयस' का अर्थ करते हुए ब्रजवासी कहते हैं कि नन्दबाबा पचासी (८५) वर्ष के हो चुके थे, तब पुत्र का जन्म हुआ । यह झूठ नहीं है । 'प्रवयस' का अर्थ है कि नन्दबाबा की आयु बहुत अधिक हो गयी थी, उन्हें सन्तान होने की कोई सम्भावना नहीं थी । भगवान् की आराधना और कृपा से उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई । वसुदेवजी ने उनसे यहाँ तक कहा कि – **'प्रजाशाया निवृत्तस्य'** – आपको सन्तान की आशा हट गयी थी ।

स्त्रियों को जब तक मासिक धर्म होता है तभी तक सन्तान की आशा रहती है । मासिक धर्म बन्द होने के बाद सन्तान की आशा हट जाती है ।

कुछ आचार्य लोग लिखते हैं कि बिलकुल अनहोनी बात हुई – **'प्रजाशाया निवृत्तस्य'** आशा भी हट गयी कि इतनी अधिक अवस्था में अब सन्तान नहीं होगी ।

इसलिए ब्रजवासियों ने नन्दबाबा से कहा – 'बाबा ! तेरी पचासी वर्ष की आयु में बेटा हुआ ।' तो यह बात सही है । इसके बाद वसुदेवजी ने कहा कि मेरा पुत्र बलराम आपको ही अपना पिता मानता होगा ।

दाऊजी के जन्म के विषय में भी मतभेद है । कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं कि दाऊजी का जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को हुआ था । जीव गोस्वामीजी का मत है कि बलरामजी श्रीकृष्ण से आठ महीने बड़े थे । कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं कि भाद्रपद शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि में बुधवार को दोपहर में बलरामजी का जन्म हुआ । इस हिसाब से ये श्रीकृष्ण से साढ़े ग्यारह महीने बड़े हैं । एक मत से बलरामजी आठ महीने बड़े तथा दूसरे मत से साढ़े ग्यारह महीने बड़े हैं । कुछ आचार्य जैसे चाचा वृन्दावनदासजी के अनुसार श्रावण शुक्ल पंचमी (जिसे नाग पंचमी भी कहते हैं) को बलरामजी का प्राकट्य हुआ था । इस तरह देखा

जाये तो हर स्थिति में बलदाऊजी आयु में श्रीकृष्ण से बड़े हैं ।नन्दबाबा ने वसुदेवजीसे कहा कि तुम्हारे कई पुत्र कंस ने मार डाले । इस प्रकार बातचीत करने के बाद वसुदेवजी ने नन्दबाबा से कहा कि आपने अपना वार्षिक कर कंस को दे दिया । अब आप शीघ्र ही गोकुल चले जाइये क्योंकि वहाँ उत्पात होने की सम्भावना है ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – वसुदेवजी की बात सुनकर नन्दबाबा गोकुल की ओर चल दिए ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जब नन्दबाबा मथुरा से गोकुल की ओर जा रहे थे तो रास्ते में वे विचार करने लगे कि वसुदेवजी की बात झूठी नहीं हो सकती, इसलिए वे उत्पात होने की आशंका से मन ही मन भगवान् की शरण में गये ।

इधर कंस ने पूतना नाम की राक्षसी को गोकुल भेजा । वह बालघातिनी थी । उसको कंस ने आदेश दिया था कि आजकल थोड़े समय में जितने भी बच्चे पैदा हुए हैं, उन सबको समाप्त कर दो । शुकदेवजी कहते हैं कि ऐसी राक्षसियों का बल कहाँ चलता है ?

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुः यातुधान्यश्च तत्र हि ॥

(श्रीभागवतजी - १०/६/३)

इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'सात्वत' का अर्थ श्रीधरस्वामीजी ने दिया है – कृष्ण नाम - जहाँ पर कृष्ण नाम का श्रवण और कीर्तन नहीं किया जाता अर्थात् जिस घर में नित्य कृष्ण नाम का श्रवण और कीर्तन नहीं किया जाता है, वहाँ भूत-प्रेत आदि की बाधायें आती हैं । सबसे बड़ा कवच यही है कि सभी लोग कृष्ण नाम का कीर्तन करो । जहाँ पर कृष्ण नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है, वहाँ पर भूत-प्रेत आदि बाधा देते हैं । इसलिए सबके घरों में कृष्ण नाम कीर्तन गुंजरित होना चाहिए, कृष्ण नाम की झनकार होनी चाहिए । ये महापुरुष लोग हमारे कल्याण के लिए ऐसा लिख गये हैं ।

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥

(श्रीभागवतजी - १०/६/४)

वह पूतना एक बार आकाश मार्ग से उड़कर गोकुल में आई । 'एकदा' का अर्थ आचार्यों ने लिखा है कि वह रात में उड़कर आयी । वह इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थी, उसने बड़ा ही सुन्दर रूप बना लिया । वह बालघातिनी थी, छोटे-छोटे बच्चों की हत्या कर देती थी । विष्णुपुराण में उल्लेख है कि वह रात में ही बच्चों को चुपचाप विष लगा हुआ स्तन पिला देती थी । उसी समय बच्चों के अंग टूटकर नष्ट हो जाते थे । वह अपने स्तनों में ऐसा भयंकर विष लगाती थी कि बच्चों के होठों का स्पर्श करते ही उनके हाथ, पैर, सिर, पेट आदि सभी अंग अलग-अलग हो जाते थे । जीव गोस्वामीजी श्लोक '१०/६/४' में प्रयुक्त शब्द 'एकदा' का अर्थ करते हैं – 'रात्रौ' अर्थात् रात में ही पूतना आई । यही पराशर ऋषि का मत है और यही वैशम्पायन ऋषि का भी मत है । इसलिए वह पूतना रात्रि में उड़कर गोकुल में आई, उसने बहुत से बच्चों को मारा । अब यहाँ सोचा जा सकता है कि उसके द्वारा बहुत से ब्रजवासी मारे गये । तो इस बात की शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका उत्तर आचार्यों ने दिया है कि उसके द्वारा कंस पक्षीय बालक मारे गये, जो कंस का पक्ष करते थे । यह कंस की मूर्खता देखो कि अपने ही पक्ष के लोग उसने मरवा दिए । ऐसा कैसे हुआ, यह लीला शक्ति की विचित्रता है कि वह उन्हीं घरों में घुसती थी, जहाँ कृष्ण- नाम का कीर्तन नहीं होता था, यह भागवत का प्रमाण है – **न यत्र श्रवणादीनि.....** । (श्रीभागवतजी - १०/६/३) जो लोग कृष्ण नाम नहीं लेते थे, पूतना ने उन्हीं घरों के बच्चों को मारा । यह लीला शक्ति की विचित्रता है । जब वह गोकुल पहुँची तो अपनी माया से बड़ा ही सुन्दर रूप बना लिया । बड़ी सुन्दर साड़ी वह पहने थी, उसकी चोटी में बेले के फूल गुंथे हुए थे । मुख की ओर लटकी हुई अलकें बड़ी सुन्दर लगती थीं । उसके सुन्दर रूप को देखकर सभी ब्रजवासी मोहित हो गये । गोपियाँ उसे देखकर आपस में कहने लगीं कि यह तो लक्ष्मी हैं, अपने पति का दर्शन करने आयी हैं ।

यहाँ आचार्य लिखते हैं कि क्या असुरों की माया भक्तों को भी मोहित कर लेती है क्योंकि पूतना को देखकर गोपियाँ उसे लक्ष्मी समझ रही थीं तो क्या पूतना की माया ऐसी थी ? आचार्य लोग लिखते हैं कि ऐसी बात नहीं है, यहाँ आसुरी शक्ति काम नहीं कर रही है । वे लिखते हैं –

'यद्यपि पूतना सिद्धभक्तान् मोहितुं न शक्यते ।' पूतना सिद्ध भक्तों को मोहित नहीं कर सकती थी । तथापि भगवान् की

लीला शक्ति लीला के लिए कभी-कभी ऐसा भी दिखा देती है कि सिद्ध भक्त भी मोहित हो गये ।

यद्यपि जगन्मोहिनी भगवन्मायापि तान् सिद्धभक्तान्मोहयितुं नोत्सहते तदपि कृष्णलीलाशोभासिद्धयर्थम् ऐन्द्रजालिकमायेव तानपि पूतनादिमाया मोहयति – भगवदिच्छावशादिति ज्ञेयम् ।

(श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी) पद्म पुराण में उत्तर खण्ड में श्री शक्ति, लीला शक्ति और भू शक्ति का वर्णन किया गया है । उसमें लीला शक्ति को वृन्दा देवी बताया गया है, जो वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी हैं ।अस्तु, पूतना नन्द भवन पहुँच गयी और उसने दूर से एक बालक को देखा । वह उसके पास गयी । बालकृष्ण पलना में लेटे हुए थे । सद्योजात बड़ा छोटा-सा शिशु है । नवनीत (माखन का लौंदा) के समान अत्यंत कोमल नीलमणि पलना में लेटे हुए हैं । पूतना को देखते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र बन्द कर लिए – **'निमीलितेक्षणः ।'** इस पर आचार्यों ने अनेकों भाव व्यक्त किये हैं कि पूतना के आते ही श्रीकृष्ण ने अपने नेत्र क्यों बन्द कर लिए ? वल्लभाचार्यजी ने सुबोधिनी में लिखा है कि अविद्या ही पूतना है । भगवान् श्रीकृष्ण ने सोचा कि मेरी दृष्टि के सामने अविद्या टिक नहीं सकती, ऐसे में लीला कैसे होगी इसलिए उन्होंने नेत्र बन्द कर लिए । पूतना ने बालकृष्ण को अपनी गोद में छोटा बच्चा समझकर इस तरह उठा लिया जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति सोये हुए सर्प को रस्सी समझकर उठा ले । पास में यशोदा मैया और रोहिणी मैया खड़ी थीं किन्तु वे पूतना को रोक नहीं पायीं, चुपचाप उसे देखती रह गयीं । पूतना ने बालकृष्ण को अपनी गोद में लिटाकर भीषण विष लगे हुए स्तन को उनके मुख में दे दिया । उस समय बालकृष्ण ने अपने नेत्र इसलिए भी बन्द कर लिए थे क्योंकि नवजात शिशु जब प्रारम्भिक अवस्था में स्तनपान करता है तो नेत्र बन्द करके माता के वात्सल्य का आस्वादन करता है । नवजात शिशु सदा नेत्र बन्द करके ही माता का स्तनपान करता है, उसे माता के वात्सल्य में अत्यधिक आनन्द का अनुभव होता है । नेत्र बन्द करने के पीछे अन्य भाव तो हैं ही, एक भाव यह भी है कि बालकृष्ण यहाँ वात्सल्य रस का आस्वादन कर रहे हैं । भगवान् कृष्ण पूतना के स्तनों को जोर से पकड़कर रोष के साथ उसके दूध को पीने लगे क्योंकि जानते थे कि इसका संहार करना है, नहीं तो जीवित रहकर यह अन्य बालकों को मारेगी । महात्मा लोग भाव बताते हैं कि रोष के साथ भगवान् स्तनपान क्यों कर रहे हैं, रोष के रूप में रोष के अधिष्ठातृ देवता शिवजी हैं, उन्होंने पूतना के स्तन में लगे विष का पान किया । बालक तो विष पीता नहीं है । बालकृष्ण पूतना के प्राणों को पीने लगे । प्राण निकलते समय बड़ा कष्ट होता है, अतः पूतना बालकृष्ण से अपने को छुड़ाने लगी किन्तु छोटा सा कन्हैया उसे छोड़ ही नहीं रहा था । मन ही मन कन्हैया कह रहे थे कि जिसको मैं पकड़ लेता हूँ फिर उसे छोड़ता नहीं हूँ । पूतना के प्राण निकल रहे थे, अतः कष्ट के कारण वह चिल्लाने लगी – 'अरे छोड़, छोड़, छोड़' किन्तु बालक तो दूध पीता ही रहा, बालक नहीं छोड़ता है । कष्ट के कारण पूतना के नेत्र पलट गये, वह अपने हाथ-पाँव पटकने लगी, उसके शरीर से पसीना बहने लगा और वह बुरी तरह रोने लगी । उसके रोने-चिल्लाने की अत्यन्त भयंकर ध्वनि से सारा आकाश भर गया, पहाड़ों के साथ पृथ्वी डगमगा उठी । उसके प्राण निकल गये और अपने राक्षसी रूप में प्रकट होकर वह बाहर गोष्ठ में आकर गिर पड़ी । गिरते-गिरते भी पूतना के शरीर ने छः कोस तक के वृक्षों को कुचल डाला । इस प्रकार छः कोस के शरीर वाली पूतना पृथ्वी पर गिर पड़ी और बाल कृष्ण निर्भय होकर उसके स्तनों पर खेल रहे थे । गोपियाँ दौड़कर वहाँ पहुँचीं और बालकृष्ण को उठा लिया । इसके बाद यशोदा और रोहिणी ने गोपियों के साथ -गाय की पूँछ को बालक कृष्ण के ऊपर घुमाया क्योंकि गाय की पूँछ में समस्त देवताओं का निवास है । उन्होंने गोमूत्र से बालकृष्ण को स्नान कराया फिर उनके अंगों में गो रज और गोबर लगाकर कवच से भगवान् के नामों को पढ़कर स्वयं भगवान् की रक्षा करने लगीं । इसका भाव यह है कि भगवान् का नाम तो स्वयं भगवान् की भी रक्षा करता है तो फिर हम लोगों की रक्षा क्यों नहीं करेगा ? इसलिए सभी लोगों को चाहिए कि अपने घरों में नित्यप्रति भगवान् के नामों का कीर्तन करें । यदि निष्ठा से नाम कीर्तन करोगे तो कोई संकट नहीं आयेगा । इस प्रकार गोपियों ने बाल कृष्ण के सभी अंगों की भगवन्नाम के द्वारा रक्षा की । ऐसा क्यों किया ? इसका उत्तर वे स्वयं देती हैं – **सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ।**

(श्रीभागवतजी - १०/६/२९)

सभी अनिष्ट भगवान् विष्णु का नाम उच्चारण करने से भयभीत होकर नष्ट हो जाएँ । इसलिए सभी लोग कृष्ण नाम लो, तुम्हारी समस्त ग्रह बाधायें नष्ट हो जाएँगी । गोपियों द्वारा बालकृष्ण की

रक्षा करने के लिए जो कवच का पाठ किया गया, उसका सारांश, उसका मूल १०/६/२९ में ही उन्होंने कह दिया है कि समस्त उत्पात भगवन्नाम के उच्चारण से नष्ट हो जाते हैं । इसलिए जोर-जोर से भगवान् का नाम लो और जितने भी उत्पात हैं – डाकिनी, राक्षसी, भूत-प्रेत,पिशाच,यक्ष, राक्षस, वृद्ध ग्रह, बालग्रह आदि ये सभी नष्ट हो जायेंगे ।

शक्ति का स्रोत 'संकीर्तन'

श्रीबाबा महाराज के सत्संग (२१/५/२०१०) से संग्रहीत

रामचरितमानस में वर्णित नाम की महिमा का प्रसंग चल रहा है, बालकांड के १९ वें दोहे की प्रथम चौपाई की द्वितीय अर्द्धाली की व्याख्या की जा रही है कि नाम ही से ब्रह्मा में सृष्टि करने की शक्ति आती है, विष्णु में पालन करने की और शिव में संहार करने की शक्ति आती है । इसलिए यहाँ पर नाम को **'बिधि हरि हरमय'** कहा गया अर्थात् नाम विधि हरि हर के तादात्मक भी है और प्रचुरात्मक भी है, मय का यह अर्थ हुआ । तादात्मक अर्थात् नाम से ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति आदि भी है और प्रचुरात्मक अर्थात् इनका अलग-अलग स्वरूप हो गया, जैसे - ब्रह्मा के चार मुख हो गए, विष्णु की चार भुजायें हो गयीं लेकिन हैं ये सब नाममय । इसीलिए ये कहा गया है – "रुद्रोऽग्निरुच्यते रेफ़ो विष्णुः सोमवरोच्यते । तयोर्मध्ये गतो ब्रह्मा आकारो रविरुच्यते ॥" नाम ही ब्रह्मा है, नाम ही विष्णु है, नाम ही शिव है । ये उपरोक्त वर्णित अर्द्धाली के प्रथमांश 'विधि हरि हरमय' का अर्थ हुआ । अब आगे के शब्दों में 'बेद प्राण सो' का अर्थ लेते हैं, वेद का प्राण है - ॐ, ये नाम ही प्रणव है, इसमें कोई भेद नहीं समझना चाहिए । जो मनुष्य भेद समझता है, वह नाम की महिमा नहीं जानता । कुछ विद्वान कहते हैं कि प्रणव (ॐ) में सबका अधिकार नहीं है । उपरोक्त अर्द्धाली में बताया गया है कि 'ॐ' से भगवन्नाम इसलिए बड़ा है क्योंकि 'सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू ।' ॐ को स्त्रियाँ नहीं जप सकतीं, शूद्र नही जप सकता, ऐसी वेद की मर्यादा है । यद्यपि आज के लोग जाति प्रथा नहीं मानते हैं । भले ही आजकल के लोग जाति प्रथा नहीं मानें लेकिन यह अनादिकाल से चली आ रही है । कलियुग में जातिप्रथा को नहीं माना जायेगा, यह भी बात शास्त्रों में पहले ही लिख दी गयी है । कर्म के अनुसार जाति मिलती है । पूर्व जन्म के अनुसार शरीर मिलता है । आधुनिक विचारों वाले जातिप्रथा के आलोचक लोग कहते हैं कि जाति प्रथा अलगाव वाला मामला है, इससे समाज में भेदभाव उत्पन्न होता है इसीलिये हम जाति नहीं मानते, उनसे पूछना चाहिये कि सभी मनुष्य एक हैं तो सबकी एक-सी शक्ल, एक-सी ताकत, एक-सी अक्ल क्यों नहीं है ? आखिर क्यों कोई आदमी मोटा है, कोई लम्बा है, कोई छोटा है, कोई नाटा है, कोई ठिगना है, कोई रोगी है, कोई निरोगी है, कोई काना है, कोई लंगड़ा है, कोई लूला है, कोई गंजा है, ये सब भेद क्यों है ? ये कर्म के अनुसार है । यदि जाति न भी मानो तो भी संसार में एक आदमी अमीर के घर पैदा हुआ, एक गरीब के घर पैदा हुआ, एक फावड़ा चलाता है, एक गाड़ी में घूमता है, ये सब अन्तर क्यों हैं ? ये कर्मों के अनुसार है । कर्मों के अनुसार जन्म होता है, इसको तुम मिटा नहीं सकते, वैसे ही कर्मों के अनुसार जातियों में जन्म होता है । इसीलिए स्त्री, शूद्र आदि को 'ॐ' का अधिकार नहीं है किन्तु 'भगवन्नाम' में सबको अधिकार है –

'सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू ।'

इसलिये ॐ आदि का भी प्राण है –'भगवन्नाम' इसको सब ले सकते हैं, पतित से पतित भी 'भगवन्नाम' ले सकता है लेकिन 'ॐ' को नहीं ले सकता । अतः भगवन्नाम के प्रसंग में ब्रह्मा में जो कुछ ब्रह्मापन है, वह भगवन्नाम से है; हरि (विष्णु) में जो कुछ विष्णुपन है, वह भगवान् के नाम से है । हर (शिव) में जो कुछ शिवपन है, वह भगवान् के नाम से है । वेद, ॐकार आदि का प्राण है - भगवन्नाम । आगे तुलसीदासजी कहते हैं –**'अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥'** हमको-तुमको मालूम पड़ता है कि राम या कृष्ण साधारण नाम हैं, जैसे – 'र' में बड़ा 'आ' लगाया और 'म' लगाया तो राम नाम हमने लिखा, यह मायिक लगता है । जैसे - कृष्ण नाम लिखने के लिए 'क' में 'रि' और आधा 'ष्ण'

तथा 'ण' लगाया तो कृष्ण लिख गया, लेकिन हमारी मायिक दृष्टि के कारण हमें यह नाम मायिक दिखाई पड़ता है वस्तुतः ऐसा नहीं है, 'भगवन्नाम' अगुण अर्थात् गुणातीत है, हमें इसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं है, जैसे - भगवान् पृथ्वी पर आये तो भगवान् को सबने नहीं देखा – **जिन्ह कें रही भावना जैसी ।**

प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – २४१)

भगवान् का वास्तविक रूप सब नहीं देख पाए, जिसकी जैसी दृष्टि थी, उसको वही रूप दिखाई पड़ता था । हमारे सामने यदि भगवान् आ जायें तो हमको दिखाई नहीं पड़ेंगे, हमें तो उनका मनुष्य रूप दिखाई पड़ेगा । यह एक शाश्वत् नियम है जो रामायण में तो लिखा ही है, भागवत में भी कहा है – **मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् । गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः । मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां । वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥**

(श्रीभागवतजी १०/४३/१७)

कंस के अखाड़े में 'श्रीकृष्ण' मल्लों को पहलवान दिखाई पड़े, स्त्रियों को कामदेव दिखाई पड़े, दृष्टिभेद के कारण सबको अलग-अलग दिखाई पड़े । अतः भगवान् साक्षात् गुणातीत हैं लेकिन अपनी दृष्टि के अनुसार हमको उनके वास्तविक रूप का दर्शन नहीं हो रहा है । उसी तरह से भगवान् का नाम अगुण अर्थात् गुणातीत है । 'अनुपम' यानि इसकी उपमा नहीं है, अनन्त गुणों का निधान है, जैसे - भगवान् में अनन्त गुण हैं वैसे ही भगवान् के नाम में भी अनन्त गुण हैं, वस्तुतः है यह गुणातीत, इसका सच्चा अनुभव उपासना से होता है । शिव आदि ने इसका अनुभव किया जैसे – आगे की चौपाई में गोस्वामी तुलसीदासजी इसका प्रमाण दे रहे हैं –

"महामन्त्र जोइ जप्त महेसू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ॥"

भगवन्नाम गुणातीत है, इसीलिए तो शिव, ब्रह्मा आदि इसको जपते हैं, अगर वे नाम जपना छोड़ दें, नाम का आश्रय छोड़ दें तो उनका ब्रह्मापन चला जायगा, शिवपन चला जायेगा, विष्णुपन चला जायेगा और यहाँ तक कि भक्त अगर नाम का आश्रय छोड़ देता है तो उसकी भक्ति चली जायगी । ये बात आगे कही गयी है –

"भगति सुतिय कल करन बिभूषन ।"

भक्तरूपी स्त्री के कर्ण का आभूषण है – **'भगवन्नाम'** । अगर भगवन्नाम का आश्रय नहीं है तो भक्ति विधवा हो जाएगी । लोग इस बात को जान नहीं पाते ।

श्रीबाबा महाराज के पास सब तरह के लोग आते हैं । एक महात्मा थे, वह अपने आपको रसिक मानते थे, एक बार उन्होंने श्रीबाबा से कहा कि मैं अमुक स्थान में रहा तो वहाँ मृदंग-ढोलक, झाँझ-मजीरा आदि वाद्ययंत्र बजकर संकीर्तन होता था तो मुझको विघ्न-बाधा होती थी; उनकी बात सुनकर बाबाश्री शांत रहे, उनके इस कथन का कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु उनके मन में यह विचार आया कि किसी भी वैष्णव सम्प्रदाय में आज तक ऐसा कोई रसिक नहीं हुआ जिसने भगवन्नाम से कोई बाधा मानी हो लेकिन यह अज्ञ पुरुष ऐसी बातें कह रहा है, अपने को इतना ऊँचा मान रहा है कि इसे नाम- संकीर्तन से बाधा होती है । इस सम्बन्ध में सम्प्रदायों का उदाहरण देख लो, राधावल्लभ सम्प्रदाय में सबसे पहले सेवक जी ने कहा है –

"नाम वाणी जहाँ श्याम-श्यामा तहाँ ।
नाम वाणी प्रगट श्याम-श्यामा प्रगट । ।"

रस वाणी पीछे पढ़ो, पहले नाम ग्रहण करो । स्वामी हरिदासजी के बारे में नाभा जी ने लिखा है –

"जुगल नाम सों नेम जपत नित कुंज बिहारी ।"

स्वामी हरिदासजी निरंतर युगल नाम-रस का पान करते थे । महावाणी के अनुसार निकुंज में नित्य संकीर्तन होता है – **राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ।**
राधे श्याम राधे श्याम श्याम श्याम राधे राधे ॥

नित्य निकुँज में सखियाँ इस युगल मन्त्र का कीर्तन करती हैं । ऐसा कोई भी सम्प्रदाय नहीं है जहाँ भगवन्नाम से बाधा मानी गई हो, क्योंकि तत्त्वतः भक्ति का साधन व साध्य **'भगवन्नाम'** ही है ।

ध्रुवदासजी ने कहा है "प्रगट जगत में जगमगै वृन्दा विपिन अनूप । नयन अछत दीखे नहीं यह माया को रूप ॥" नेत्रों की स्थूल दृष्टि होने के कारण हमें धाम का वास्तविक स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता है।

जन्म-मरण का सच्चा साथी 'श्रीइष्ट-नाम'

बाबाश्री के पदगान-सत्संग (१०/११/२०२२) से संकलित

भक्तमाल में भक्त कामध्वजजी की कथा वर्णित है कि किसी सघन वन में उनका निधन हो गया; उस समय वहाँ उनके पार्थिव देह का दाह-संस्कार करने वाला भी कोई नहीं था; ये श्रीरघुनाथजी के भक्त थे । अपने भक्त का अन्तिम संस्कार करने के लिए स्वयं प्रभु श्रीरामजी जाने के लिए तैयार हुए तो उनके अनन्य सेवक श्रीहनुमन्तलालजी ने उन्हें रोक दिया और वे स्वयं श्रीरामजी के उन परम भक्त के मृतक देह का अग्नि-संस्कार करने के लिए उस वन में पहुँच गये । वहाँ पहुँचकर श्रीहनुमानजी ने स्वयं अपने हाथों से लकड़ियाँ एकत्रित कीं और राम भक्त का दाह संस्कार कर दिया । उनकी चिता के धुएँ के स्पर्श से वन के समस्त भूत-प्रेतों का उद्धार हो गया । एक भूत उस समय अपने समुदाय से कहीं दूर चला गया था । जब वह उस स्थान पर लौटकर आया और अपने साथी प्रेतों की विशुद्ध भक्त की चिता के धुएँ से सद्गति को देखा तो वह अपने दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप करते हुए आत्मोद्धार हेतु आर्त्त स्वर से विलाप करने लगा, उसके करुण विलाप को उस जंगल में रहने वाले एक महात्मा ने सुना तो उन्होंने लकड़ियाँ बीनकर पुनः उस चिता की भस्म में रखकर अग्नि प्रज्वलित की, उससे जो धुआँ निकला, उसके स्पर्श से इस प्रेत का भी उद्धार हो गया । इसीलिए इस पद की यह पंक्ति है – **'मैं तेरा हूँ तू ही हमारा है, नहीं कोई यहाँ हमारा है । कोई भी न मिला ज़माने में, ढूँढ़ डाला ये जगत सारा है ।'** संसार में जब कोई भी तुम्हारा नहीं हो, यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् तुम्हारे मृतक देह का अन्तिम संस्कार करने वाला भी कोई न हो, उस समय केवल प्रभु और उनके भक्तगण ही काम आते हैं ।

'बने साथी हजारों ही मेरे'

इस दुनिया में हजारों लोग हमारे साथी बनते हैं किन्तु

'संग जाता न कोई प्यारा है ।' इसलिए

'छोड़ दे छोड़ दे सभी रिश्ते'

सबसे सम्बन्ध छोड़ना कठिन है किन्तु फिर भी दुनिया के सभी रिश्ते छोड़ दो, क्योंकि **'डूबा इनका लिया सहारा है'** संसार के लोगों से सम्बन्ध जोड़ने से, उनसे प्रेम करने का क्या परिणाम होगा ?

स्वार्थियों से जो प्रीति की तूने,
फूटा आँखों का बीच तारा है ।

जब आँखों के तारे फूट जाते हैं तो आँख बेकार हो जाती है । डॉक्टर मरीज से कहता है कि तुम्हारी रेटिना निष्क्रिय हो चुकी है अर्थात् तुम्हारी नेत्र ज्योति समाप्त हो गयी है, अब इसकी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती है । इसी प्रकार संसारियों से सम्बन्ध जोड़ने पर सर्वनाश होता है । इनसे प्रेम करने पर परमार्थ के पथ पर कोई लाभ नहीं होता, हानि ही होती है और भक्ति नष्ट हो जाती है । इन स्वार्थी लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने पर अवश्य ही विनाश होता है, अतः इनका संग छोड़ देना चाहिए । **'मेरा सिर तेरे दर पै ही रहे, मेरी किस्मत का तू सितारा है । याद तेरी जो मेरे दिल में रहे, क्या हुआ डूबे बीच धारा है । तुझे भूला रहा भटकता मैं, याद तेरा ही इक सहारा है ।'** इस बात को सदैव स्मरण रखो कि गीता में भगवान् ने कहा है – **अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥** (श्रीगीताजी ८/५)

अन्तकाल में जो मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह मुझे ही प्राप्त करता है । उसका निश्चित ही कल्याण होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इसलिए **'याद तेरी जो मेरे दिल में रहे, क्या हुआ डूबे बीच धारा है ।'** क्या हुआ जो शरीर छूट गया, यदि उस समय भगवान् की स्मृति बनी रही तो निश्चित कल्याण है । भगवान् की यह प्रतिज्ञा है कि हे अर्जुन ! अन्तकाल में जो मेरा स्मरण करते हुए देह त्याग करता है, वह अवश्य ही मेरे पास आता है, भवसागर से वह पार हो जाता है, उसका अवश्य ही कल्याण होता है ।

ऐसी उपलब्धि के लिए अन्तकाल में भगवान् का स्मरण अवश्य होना चाहिए किन्तु अन्तिम समय भगवान् की स्मृति नहीं हो पाती है । जीवन भर जिससे प्रेम किया,

अन्त में उसी का स्मरण होता है, भगवान् की याद नहीं आती है । **'याद मीठी है मिश्री से ज्यादा,**
तेरे बिना ये जगत खारा है ।'

भगवान् की स्मृति मिश्री से भी अधिक मीठी है । उनके स्मरण के बिना, सम्पूर्ण विश्व समुद्र के जल के समान खारा है । **'चाहे कितनी भी सजा दे कोई,**
बिना तेरे मिट्टी का गारा है ।'

संसार में अनेक प्रकार के कष्ट हैं, अनेक तरह के दण्ड हैं, चाहे कोई कितनी भी सजा दे दे किन्तु अन्त समय में यदि भगवान् का स्मरण नहीं हुआ तो यह शरीर केवल मिट्टी का गारा है । **'सोना चाँदी हीरा माणिक मोती,**
हमने सब कुछ तुझी पे हारा है ।'

सब कुछ भगवान् को अर्पित कर दो । अपने पास सोना, चाँदी, हीरा, माणिक और मोती आदि संसार में बहुमूल्य माने जाने वाले पदार्थ बिलकुल भी मत रखो । क्यों इनका संग्रह करते हो ? ये सब काल के अस्त्र हैं । केवल प्रभु का नाम-कीर्तन करो, उनका गुणगान करो और उनका स्मरण करो, इसके अतिरिक्त आत्मनाश का कोई कार्य मत करो ।

ढूँढा करती हैं आँखें तुमको ही,
यही तो बचा बस एक चारा है ।
तू नहीं मेरे सामने प्यारे,
तेरे नाम का ही इक सहारा है ।

हे श्यामसुन्दर ! तू यदि मेरे नेत्रों के सामने नहीं है तो कोई परवाह नहीं है, तेरा नाम तो मेरे पास है, वही मेरे लिए जीवन का एकमात्र सहारा है । देखो, यह भारतवर्ष है । यहाँ सनातन धर्म की प्रधानता है । सनातन धर्म के अनुयायियों की जब मृत्यु होती है तो उनकी शवयात्रा में लोग बोलते हैं – 'राम नाम सत्य है ।' क्योंकि सत्यस्वरूप भगवान् हमारे समक्ष नहीं हैं किन्तु उनका नाम तो हमारे पास है, इसलिए घबराओ मत । यही कारण है कि शवयात्रा में जाते समय लोग केवल यही कहते हैं – राम नाम सत्य है । किन्तु मुख से ही ऐसा कहते हैं, यदि वे यथार्थ में हृदय से राम नाम को सत्य मान लें तो अवश्य ही उनका कल्याण हो जाए ।

मेरे जीवन की एक सच्ची घटना है, जब मैं ब्रजवास करने के लिए अपने आरम्भिक दिनों में मानगढ़ पर रहा करता था, उन्हीं दिनों गाँव में एक वयोवृद्ध ब्रजवासी रहते थे, वे मुझसे स्नेह रखते थे । जब उनका अन्तिम समय आया तो मैं उनके घर गया तो उन्होंने मुझसे कहा – 'बाबा ! मेरे पुत्र को बुला दो ।' मैंने सोचा कि अब इनको मैं क्या ज्ञान दूँ किन्तु यह कितना दुःखद है कि मृत्यु के मुख में जाते समय भी मनुष्य मोहवश अपने पुत्र की याद करता है, जबकि पुत्र कल्याण नहीं कर सकता है । उस वृद्ध व्यक्ति ने पुत्र का स्मरण करते हुए देह का त्याग कर दिया । वस्तुतः तो इस संसार में केवल राम नाम ही सत्य है, बाकी सब कुछ असत्य है । अतः केवल भगवान् का स्मरण करो, उनके नाम का स्मरण करो ।

'लोक और लाज जला दिया मैंने'

लोक की लाज को जला दो, इससे कोई लाभ नहीं होने वाला है । केवल प्रभु का नाम ही सत्य है, इसीलिए भारतवर्ष में शव के अन्तिम संस्कार को जाते समय इसी वाक्य को जोर-जोर से बोलने की परम्परा चलायी गयी – 'राम नाम सत्य है । ' अरे भाई ! सत्य तो केवल प्रभु का नाम ही है, इसी का स्मरण करो, इसी का गान करो । सनातन धर्म की यह परम्परा केवल भारत में ही है, दुनिया में अन्यत्र किसी भी देश में ऐसी महान परम्परा नहीं है ।

'लोक और लाज जला दिया मैंने,
वेद मर्यादा को अब जारा है ।'

लोक-लाज अर्थात् लोक-मर्यादा को जलाने के उपरान्त अब वेद-मर्यादा को भी जला देना चाहिए क्योंकि वेद का उद्घोष है – **'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव ।'** अर्थात् 'माता देवता है, पिता देवता है' ये सब व्यर्थ की बात (लौकिक धर्म) है । वास्तव में न तो माता देवता है और न ही पिता देवता है । देवता तो केवल प्रभु का नाम है, अतः सदैव उसी को गाओ, उसी का स्मरण करो ।

'भावे हि विद्यते देवाः तस्माद् भावो हि जनार्दनः ।'
'भगवान्' भावनाओं में रहते हैं, मूर्ति में नहीं रहते हैं ।

सृष्टि का मूल 'भगवन्नाम'

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (२२/०५/२०१०) से संकलित

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है –

बंदउँ नाम राम रघुवर को ।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

अग्नि, सूर्य, चन्द्र इनका हेतु (कारण) भगवन्नाम है । कारण कई प्रकार के होते हैं - एक होता है 'आदिकारण' और दूसरा 'बीजकारण'; फिर कारण के भी दो भेद हो जाते हैं - निमित्त और उपादान, अतः भगवन्नाम नाम ही सब कुछ है । जैसे - कुम्हार घड़ा बनाता है, तो बनाने वाला जो कुम्हार है वह निमित्त कारण है और मिट्टी उपादान कारण है । मिट्टी को लेकर के कुम्हार ने घड़ा बना दिया, तो मिट्टी तो है उपादान कारण और कुम्हार है निमित्त कारण । तो राम नाम को गोसांईजी ने कारण और बीज दोनों माना, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा को पहले लिया और उसके बाद में ब्रह्मा, विष्णु, महेश को लिया ।

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो ।
अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

इन सबका कारण गोस्वामीजी ने नाम को ही माना है, एक तो यह होता है कि गोस्वामीजी ने लिख दिया, तो श्रद्धा से मान लिया लेकिन यह बात वैज्ञानिक-परिवेश में भी यथार्थ सत्य है । ब्रह्म के दो भेद किये गये हैं –

शब्दब्रह्म और नादब्रह्म । शब्दब्रह्म, जैसे कि ॐकार है अकार, उकार, मकार ये तीन व्याहृतियाँ है अथवा जैसे - रामनाम में पाँच व्याहृतियाँ है, कृष्ण नाम में भी पाँच व्याहृतियाँ है । 'शब्द ब्रह्म' ही 'नाद ब्रह्म' है, इसको स्फोटवाद कहते हैं, 'स्फोट' अर्थात् ऐसा शब्द जिसका आगे विस्तार होता है; तो उस स्फोट से ऊर्जा पैदा हुई । वैज्ञानिक-दृष्टि से सबसे पहले समझें कि 'सृष्टि' व 'प्रलय' क्या है? जो सूक्ष्म से स्थूल की ओर विकास करती है उसे 'सृष्टि' कहते हैं और स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना 'प्रलय' है । सृष्टि-प्रलय समझने के बाद यह बात समझ में आती है कि भगवन्नाम से ही अनन्त संसार प्रकट हुआ और ये सब भगवन्नाम का ही विकास है, तब उसमें एक आस्था बढ़ती है । इसी बात को भागवत में बताया गया कि पहले सृष्टि अव्यक्त थी, फिर वह व्यक्त हुई । जैसे कि पानी में से बिजली प्रकट हुई, तो जल में बिजली पहले से थी लेकिन अव्यक्त रूप में थी । फिर उस बिजली को साधनों से प्रकट किया गया तो वह व्यक्त बन गई । (ये सब वैज्ञानिक बातें हैं), बिजली अव्यक्त रूप से कैसे थी? जितनी भी अव्यक्त रूप से शक्तियाँ हैं उनका नाम है –'ऊर्जा ।' अव्यक्त स्वरूप ऊर्जा कहाँ से आयी? तो इसे गोसांईजी ने मानसजी में सम्यक् रूपेण लिखा है –

बंदउँ नाम राम रघुवर को ।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

सूर्य, चन्द्र, अग्नि को ब्रह्मादि से पहले लिया और शिवादि को बाद में लिया, उसका कारण है कि 'ऊर्जा' ही सृष्टि को चलाती है, 'ऊर्जा' ही सृष्टि का उपादान कारण बनती है, इस दृष्टि से पहले उन्होंने भानु को लिया । गोस्वामीजी ने बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से लिखा है, गोस्वामीजी ने सबसे पहले अग्नि को लिया, फिर सूर्य को, फिर चन्द्रमा को लिया । प्रथम में अग्नि को क्यों लिया? ऊर्जा में ऊष्मा होती है, कहीं की भी ऊर्जा हो, अग्नि का स्वरूप है ऊष्मा । तर्कसंग्रह, व्याकरण आदि में ऊर्जा का लक्षण लिखा है – ऊष्णस्पर्शवत्, जल का लक्षण है - शीतस्पर्शवत् । तो इसलिए गोसांई जी ने पहले अग्नि को लिया है और उस सम्पूर्ण ऊर्जा का केन्द्र है सूर्य, फिर सूर्य से चन्द्रमा में ऊर्जा जाती है, सूर्य से ऊर्जा सारे संसार में वितरित होती है । सूर्य से ही ऊर्जा जल में गिरकर अव्यक्त रूप से जमा हो गयी और वृक्षों में भी सूर्य से ऊर्जा आई है ।

एक दिल्ली के प्रोफसर (जो भूगोल के विभागाध्यक्ष थे) से श्रीबाबामहाराज ने पूछा कि पृथ्वी की आयु क्या है ? तो उन्होंने बताया कि लगभग दो अरब वर्ष है । बाबाश्री ने पूछा कि आपने कैसे पहिचाना? वह बोले कि सूर्य की किरणें भूमि के अन्दर सुदूर जाकर उनसे जो प्रतिक्रिया

(reaction) होती हैं, उन्हीं से हमलोग पता लगा लेते हैं । 'ऊर्जा' शक्तिरूपा है जो नष्ट नहीं होती है, नदियों में गयी तो नदियों ने उसको जमा कर लिया, जो टरबाइन मशीन के द्वारा बिजली बन गई (जल में अव्यक्त ऊर्जा का प्रकट रूप ही बिजली है) ।) अव्यक्त से व्यक्त की ओर चलना ही सृष्टि है और व्यक्त से अव्यक्त की ओर जाना 'प्रलय' है । अब जैसे - ऊर्जा पत्थर के कोने से प्रकट होती है, उसमें ऊर्जा कहाँ से आयी? जो वृक्ष भूचाल के कारण अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को लेकर भूमि में प्रवेश कर गये और दबे-दबे पत्थर बन गये, तो उसमें पहले से ही ऊर्जा विद्यमान थी जो सूर्य से मिली थी, फिर उसको खोदा गया तो पत्थर के रूप में कोयला निकला, जिसको जलाने से पुनः ऊर्जा प्रकट हुई । यहाँ तक कि तकनीकी लोग कूड़े से भी बिजली बनाते हैं । 'गोबर गैस प्लांट' गोबर से बनाते हैं, कूड़े से बनाते हैं, ये सारी चीजें बता रहीं हैं कि इस सारे संसार में ऊर्जा सब जगह है और उसको धीरे-धीरे प्रकट करने का ढंग मनुष्य सीखता है । जैसे सूर्य की किरणों से बिजली बन रही है, उसे सौर्य ऊर्जा कहते हैं, इन सबका धीरे-धीरे विकास भी हो रहा है । तो एक उदाहरण से समझा कि पहले सृष्टि अव्यक्त रूप में थी, फिर वह महाप्रलय के समय में अव्यक्त-शक्ति भगवान् में लीन हो जाती है, फिर अव्यक्त से व्यक्त बनती है ।

एक दूसरा उदाहरण देते हैं (क्योंकि बिना उदाहरण के साधारण आदमी नहीं समझेगा) – जैसे गहरी नींद (स्वप्न भी नहीं देख रहा) में कोई आदमी सो रहा है; ये अव्यक्त स्थिति है । वहाँ उसे कुछ भी पता नहीं है कि मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, साधु हूँ, विरक्त हूँ, गृहस्थ हूँ, बालक हूँ, बूढ़ा हूँ, स्वस्थ हूँ, अस्वस्थ्य हूँ । अब उसको झकझोरा तो उसकी चेतना व्यक्त हुई, व्यक्त होते ही सोचता है कि मैं पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, चेतना से बुद्धि आई, फिर उसमें अहं की प्रतीति हुई । अब उसके बाद वह सोचने लग गया कि हमको ये काम करना है, यहाँ जाना है, वहाँ जाना है । जल्दी से उठें, नहायें-धोयें, तैयार होंयें । तो सृष्टि पहले अव्यक्त थी फिर व्यक्त बनी । चेतना (चेतना ही ज्ञान है) जैसे जागती है, वैसे ही बुद्धि आ जाती है । (बुद्धि तत्त्व ही महत्तत्व है ।) जितनी शुद्ध चेतना होगी उतना ही बुद्धि का विकास होता है, शराब पी लो तो बुद्धि का विकास खत्म हो गया । बुद्धि आते ही वह सोचता है कि मुझे ये करना है, वह करना है । तो सृष्टि अव्यक्त से व्यक्त बनने के बाद उसमें महत्तत्व (बुद्धितत्व) आया । समष्टिबुद्धि का अधिदैव रूप है 'ब्रह्मा' । बुद्धि के बाद फिर अहं तत्त्व (मैं) बना, फिर अहं के तीन भेद हो जाते हैं । अहं त्रिगुणात्मक है, क्योंकि सृष्टि त्रिगुणात्मक है । अब तीनों गुणों का विभाग 'अहम्' से शुरू हुआ, इसके पहले विभाग नहीं था, जैसे - बीज में से अंकुर फूटने के बाद आगे चलकर पेड़ की शाखाएँ निकलने लग जाती हैं । अब प्रकृति और अधिक स्पष्ट रूप में आयी कि त्रिगुणात्मक है । सात्विक अहंकार जिसको 'वैकारिक अहंकार' भी कहते हैं, राजस अहंकार जिसको 'तैजस अहंकार' भी कहते हैं और तामस अहंकार, इस प्रकार अहं के तीन भाग हैं । एक ही प्रकृति सब काम कर रही है ।

'श्रीनाम-साधना' से ही जीव-जगत जीवित

श्रीबाबामहाराज के सत्संग **(नाम महिमा)** २२/०५/२०१० से संग्रहीत

'अहं' के तीन भाग हैं – सात्विक अहंकार तो है करने वाला कर्ता । राजस अहंकार है क्रिया या क्रिया के साधन । और तामस अहंकार है कार्य यानी कि द्रव्य । जैसे तुम लड्डू खाते हो, लड्डू है द्रव्य, खाना है क्रिया, खाने वाला है कर्ता अहं कि बड़ा मीठा है । लड्डू है कार्य, ये जो जितने पंचभूत, शरीर ये सब कार्य हैं; क्रियायें ये राजस हैं, और सात्विक अहंकार । इसको गीता से समझो –

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १३/२०)

कार्य, करण, कर्तृत्व तीन चीजें हैं । कार्य माने कि सारा संसार, करण माने क्रिया और क्रिया के साधन और कर्ता । इन तीनों चीजों की प्रकृति ही हेतु है । पुरुष भोक्ता बन जाता है, क्यों बन जाता है? पुरुष तीनों चीजों से अलग है

वह कुछ नहीं कर रहा है । २१वें श्लोक में बताते हैं कि पुरुष भोक्ता क्यों बनता है, जैसे देवरानी, जेठानी में लड़ाई भयी और दोनों भाईओं में लट्ठ बज गये । झगड़ा था स्त्रियों का और मर गये दोनों भाई, क्योंकि उनकी स्त्री में आसक्ति थी । भगवान् गीता १३/२१ में कहते हैं –

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १३/२१)

संसार की आसक्ति ही सबका मूल है, पुरुष तो एकदम अलग है । तो देखो सात्विक अहंकार से इन्द्रियों के देवता बने, राजस अहंकार से इन्द्रियाँ बनीं और तामस अहंकार के पाँच बेटे हुए उनको पंच तन्मात्रा कहते हैं या सूक्ष्म महाभूत कहते हैं और इन्हीं के बेटे हैं स्थूल महाभूत । **"क्षिति जल पावक गगन समीरा ।"**

सूक्ष्म तन्मात्रा उनका सूक्ष्म रूप है और स्थूल महाभूत उनका स्थूल रूप है । **क्षिति जल पावक गगन समीरा** । ये स्थूल रूप है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्रा ये सूक्ष्म रूप है । पंच महाभूतों की जननी पंच तन्मात्राएँ हैं । जो कि तामस अहंकार से पैदा भयीं । बिना इसके समझे नाम महिमा नहीं समझ सकते हो, भगवान् को नहीं समझ सकते हो । बहुत से लोग कहते हैं ये सब फालतू का बिषय है, समझ में नहीं आया तो कहते हैं कि फालतू का बिषय है । देखो जैसे तुम्हारा शरीर है मर गया तो इसको जला दिया, जला दिया तो क्या हुआ ? राख बन गया । फिर राख को पानी में बहा दिया, तो वह पानी बन गया । वह मिट्टी पानी बन गयी, पानी का तेज से सम्पर्क किया तो तेज बन कर के वह वायु बन गया । तो ये क्या हो रहा है ? ये धीरे-धीरे स्थूल से सूक्ष्म में जा रहा है । मिट्टी पानी बनी, फिर तेज फिर वायु फिर वह जाकर के आकाश में लीन हो गयी, सूक्ष्म रूप होता जा रहा है, ये है प्रलय । आकाश जाकर के तामस अहंकार में लीन हो गया । तामस अहंकार महत्तत्व में, और महत्तत्व जाकर के व्यक्त में और व्यक्त जाकर के अव्यक्त में और अव्यक्त जाकर के भगवान् में लीन हो गया । सारी सृष्टि पहले प्रकृति में लीन होती है, और फिर वह प्रकृति जाकर के भगवान् में लीन हो जाती है और वह प्रकृति इतनी सूक्ष्म है इस बात को भगवान् कहते हैं –

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ९/७)

सभी प्राणी प्रकृति में लीन हो जाते हैं । तो यह जो शब्द ब्रह्म है, ये सूक्ष्मतम है । इसी की शक्तियों का विकास अनन्त ब्रह्मांड है । यह हमारे यहाँ के महात्माओं ने खोज किया, इस बात को भगवान् भी कहते हैं ८वें अध्याय के १३वें श्लोक में - **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म** एकाक्षर ब्रह्म है, ओम क्या है? ये नाम है, एक वस्तु के कई नाम हैं । उस ब्रह्म के नाम हैं – **ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।**
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १७/२३)

उपनिषदों में ब्रह्म के कई नाम हैं । भगवान् के सभी नाम दिव्य होते हैं, सृष्टि का उस नाम से विकास होता है । इन्हीं नामों से ब्राह्मणों का, वेदों का, वेद में अनन्त सृष्टि का वर्णन आया है, इन्हीं नाम से अनेक यज्ञों का कर्मों का विस्तार हुआ । इसलिए बुद्धिमान् लोग पहले भगवान् का नाम लेकर तब कोइ काम करते हैं ।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्तः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १७/२४)

बिना भगवन्नाम के सब कुछ व्यर्थ है, यज्ञ, दान, तप आदि ये सब बिना भगवन्नाम के बिल्कुल बेकार हैं । **राम नाम को अंक है, सब साधन हैं सून ।**
अंक गएँ कछु हाथ नहिं, अंक रहें दस गून ॥

(तुलसीदासजी कृत दोहावली)

अथवा भागवत से समझो –

मन्त्रतस्तन्त्रश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं अनुसंकीर्तनं तव ॥

(श्रीमद्भागवतजी ८/२३/१६)

सब साधनों की पूर्ती नाम से होती है । ब्रह्मवादी लोग भी नाम लेकर कोइ कार्य करते हैं ।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्तः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी१७/२४)

फिर मुमुक्षु भी भगवन्नाम से भवसागर से पार होगा –

तदित्यनभिसन्दाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्चविविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १७/२५)

जब वह फल को छोड़ देगा तब भगवन्नाम चलेगा निष्काम भगवन्नाम लेगा तब वह मुमुक्षु बनेगा, ये शर्त है । हम लोग नाम को बेचते हैं, पैसा कमाते हैं, व्यापार बनाते हैं इसलिए नाम का फल नहीं मिलता । हम लोग नाम बेचते हैं, कथा बेचते हैं, कीर्तन बेचते हैं । मोक्ष चाहने वाले भी भगवन्नाम को लेकर के चलते हैं । तब फिर वह मुक्त हो जाते हैं । फिर 'सद्' शब्द को लिया –

सद्भावे साधुभावे च सदित्यतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १७/२६) 'सद्' भी ब्रह्म का नाम है, 'सद्भाव' जहाँ-जहाँ अवतार होता है और 'साधुभाव' जो कि दैवी सम्पत्तियाँ हैं । वह सब 'सद्' है । **यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।**
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्यवाभिधीयते ॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी १७/२७)

दान में जो श्रद्धा है, भक्ति है, वह भक्ति भी सद् है । श्रद्धा भी सद् है और जो कर्म भगवान् को अर्पण कर दिया वह भी 'सद्' बन गया । कर्मार्पित जीव भी ब्रह्म रूप हो जाता है, इसमे अर्पण भक्ति आ गयी, वह सब ब्रह्म हो जाता है –

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – १२७)

भगवद्-रूप होने का एक ही लक्षण है, तदर्थ कर्म करो । तो हमने इसीलिए बताया कि नाम और नामी अभेद हैं इसलिए सृष्टि का मूल 'नाम' है ।

बंदउँ नाम राम रघुबर को । हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड – १९)

हम भगवान् के नाम की वन्दना करते हैं । जो **नाम** 'अग्नि, सूर्य, और चन्द्रमा' का कारण है । अनन्त ऊर्जाएँ इसी भगवान् के नाम से निकलीं हैं । ऊर्जा को सृष्टि रूप में, जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है, तो मिट्टी से घड़ा अलग होता है उसको फिर "**विधि हरि हरमय**" ये निमित्त कारण बने, ब्रह्मा ने बनाया, विष्णु ने पालन किया, शिव ने संहार किया । ये सब भगवन्नाममय हैं, वेदों में लिखा है - ॐकार सब कुछ है । **"वेद प्राण सों"** भगवन्नाम ही वेद का प्राण है । इसलिए नाम से ही सृष्टि बनी, नाम से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव में शक्ति आई । भगवन्नाम से ही सूर्य है, भगवन्नाम से ही अग्नि बनी, भगवन्नाम से ही चन्द्रमा है, ये सूर्य की ही ऊर्जा चन्द्रमा में परिवर्तित होती है, ऊर्जा का भौतिक रूप अग्नि है – "**ऊष्णास्पर्शवत् तेजः**" इसलिए अग्नि को पहले लिया गया । ऊर्जा सदा ऊष्ण होती है, तभी उसमें क्रिया होती है, नाम से ही अनन्त सृष्टि पैदा हुई और नाम का ही सारा विकास है; ये जो व्यक्ति जानता है तो वही नाम की महिमा जानता है । जो नहीं जानते, वे हम जैसे मूर्ख लोग ही हैं । नाम की महिमा जानने वाले ब्रह्मा, शिव आदि भक्तजन हैं – **"महामंत्र सोई जपत महेसू ।"** शिवजी सदा नाम की आराधना करते रहते हैं । 'चाहे शिव हों, चाहे ब्रह्मा हों, चाहे विष्णु हों' सभी नामाराधना करते हैं । इसीलिये "**विधि हरि हरमय** कहा गया है, ब्रह्मा, विष्णु, शिव कौन हैं? ये भीतर से तादात्मक हैं, और बाहर से प्रचुरात्मक हैं । ब्रह्मा के अंदर ब्रह्मत्व 'नाम' का है, हरि के अंदर हरित्व 'नाम' का है । शिव के अंदर शिवत्व 'नाम' का ही है । लेकिन जो इनके रूप अलग-अलग हैं – चार मुख के ब्रह्मा, चार भुजा के विष्णु, ये नाम का प्रचुरात्मक रूप है । नाम का तदात्मक रूप तो ब्रह्मत्व, शिवत्व, विष्णुत्व है । ब्रह्मा नाम का प्रचुरात्मक रूप है चार भुजा, पाँच भुजा, इसलिए ये सब नाम का ही विकास है । ऊर्जा का रूप बदलता जाता है, जैसे बिजली से फ्रीज चला लेते हैं । वह ठंडा करता है, बर्फ बनाता है । ये ऊर्जा का विकास होता रहता है । ऊर्जा अनेक रूप धारण करती है, लेकिन उसका जो मूल रूप है, वह वही रहेगा । सृष्टि में विपरीत-विपरीत गुण आते हैं जैसे आकाश में स्पर्श नहीं था, उसका बेटा हुआ हवा, उसमें स्पर्श पैदा हुआ । हवा में रूप नहीं था, उसका बेटा हुआ तेज, उसमें रूप आ गया । विपरीत गुणों का विकास होता है । तेज में द्रवत्व नहीं था, उसका बेटा हुआ जल, उसमें द्रवत्व आ गया । जल में ठोसपन नहीं था, उसकी बेटी हुई पृथ्वी, उसमें ठोसपन आ गया । संसार परिवर्तन शील है, भगवान् ने कहा है कि सारी सृष्टि परिवर्तन शील है, केवल आत्मा में परिवर्तन नहीं होता है । प्रकृति हमेशा बदलती रहती है ।

☀ 'नामी' का साक्षात् स्वरूप 'श्रीनाम भगवान्' ☀

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
राम नाम अवलंबन एकू ॥

कलियुग में केवल श्रीकृष्ण-कीर्तन से ही अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है । कलियुग को तुम बाधक मत मानो, कलियुग तो भक्ति में हमारा सहायक है ।

यत्फलं नास्ति ....केशव कीर्तनात् ॥

(श्रीपद्मपुराणोक्त भागवतमाहात्म्य - १/६८)

जो फल तपस्या, योग एवं समाधि से भी नहीं मिलता, कलियुग में वही फल 'भगवान् के कीर्तन' से ही मिल जाता है । सूत जी, शौनकादिक ऋषियों ने कलियुग का महत्व बताते हुए कहा है –

नानुद्वेष्टि कलिं.....कृतानि यत् ॥

(श्रीभागवतजी १/१८/७)

कलियुग का एक विशेष गुण यह है कि इसमें मानसिक पुण्य तो हो जाते हैं लेकिन पाप नहीं होते; इसीलिए राजा परीक्षित कलियुग से द्वेष नहीं रखते थे । रामायण में भी आता है – **कलियुग जोग न जग्य न ग्याना ।**
एक अधार राम गुन गाना ॥
कलि कर एक पुनीत प्रतापा ।
मानस पुण्य होहिं नहिं पापा ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १०३)

कलियुग में न तो योग है, न यज्ञ है और न ज्ञान ही है, केवल भगवान् का नाम ही एकमात्र आधार है । इसमें मानसिक पुण्य हैं लेकिन पाप नहीं हैं । महाप्रभु चैतन्यदेव ने भी यही कहा है कि भगवान् के नाम के बिना अन्य किसी साधन से कलियुग में मनुष्य कि गति संभव नहीं है; इसलिए वह सतत् कृष्ण नाम को ही जपते थे ।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

'कलियुग' भगवान् की ही शक्ति है जो केवल भगवान् से विमुख जीव पर ही अपना प्रभाव दिखाता है । भक्तों ने तो हर युग में काल को जीता है । कलियुग में भगवद्-गुणों का बार-बार चिन्तन करो, बार-बार चिन्तन करने से ही प्रभु में प्रेम व भक्ति होगी ।

श्रुत्वा गुणान् .....चित्तमपत्रपं मे ॥

(श्रीभागवतजी १०/५२/३७)

रुक्मणीजी ने श्रीकृष्णगुणों को सुना और उनका चिन्तन किया, ऐसा करने से उन्हें श्रीकृष्ण में प्रेम हुआ और उन्हें श्रीकृष्ण मिले । कृष्णगुण-श्रवण समस्त तीर्थों का सार है । भगवान् के गुण मानस पापों या तापों को जला देते हैं और फल में प्रभु से मिला देते हैं । प्रेम-प्राप्ति व प्रभु-प्राप्ति का सहज मार्ग प्रभु के गुणों का गान ही है ।

एक दवा तो ऐसी होती है जो केवल रोग को समाप्त करती है और एक दवा ऐसी होती है जो रोग को भी नष्ट करती है और स्वस्थ भी करती है ।

नामसंकीर्तनं यस्य ..... हरिं परम् ॥

(श्रीभागवतजी १२/१३/२३)

भगवन्नाम इसी दवा का नाम है । हर क्षण प्रभु का नाम लेते रहो । ये पाप भी नाश कर देगा और मंगल भी करेगा । भगवान् को देख करके प्यार नहीं किया जाता, भगवान् को सुनकर प्रेम किया जाता है ।

त्वं भावयोग.....प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥

(श्रीभागवतजी ३/९/११)

इस दुनियाँ में तो आँखों से देखा जाता है परन्तु उस दुनिया में कानों से देखा जाता है । श्यामसुन्दर की जो प्रेम की डगरिया है वह आँखों से नहीं दिखायी देती बल्कि सुनकर उस रास्ते पर चला जाता है, सुनना सीखो, हर क्षण उनके गुणों को सुनो, अपने-आप तुमको उनका रास्ता मिल जायेगा । रास्ता ही नहीं वे खुद ही आकर तुम्हारे पास बैठ जायेंगे । प्रभु ने कहा था कि "मैं बैकुण्ठ में नहीं रहता, जहाँ हमारे भक्त लोग बड़े स्नेह से गाते हैं, बस मैं तो वहीं पड़ा रहता हूँ ।" सब के सब क्लेश केवल एक श्रवणमात्र से ही नष्ट हो जाते हैं और भक्ति की सहज में ही प्राप्ति हो जाती है । हर क्षण कृष्णगुणगान, कथा-कीर्तन का श्रवण करते रहो । परन्तु कैसे ? श्रवण करो तो परीक्षितजी की तरह । जिन्होंने सात दिन ऐसी लगन से कथा सुनी कि वह खाना-

पीना ही भूल गये । जब स्वयं शुकदेव जी ने कहा कि "कुछ ले लो ।" तो परीक्षितजी बोले कि "हमें भोजन तो दूर पानी पीना भी बाधा लग रहा है ।" ऐसी निष्ठा चाहिए सुनने में । भाव से, अभाव से या कुभाव से, तुम किसी भी तरह प्रभु का नाम लोगे तो भी प्रभु का नाम तुम्हारे सब पाप जला देगा । भगवान् को गाली देने के लिए भी अगर तुम उनका नाम लोगे या किसी विषमता के कारण प्रभु का नाम लोगे तब भी प्रभु तुम पर दया करेंगे ।

साङ्केत्यं पारिहास्यं.....अघहरं विदुः ॥

(श्रीभागवतजी ६/२/१४)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

जब मेघनाद मरते समय रामजी को गाली देकर मरा तो हनुमानजी कहते हैं कि धन्य है इसकी माँ जो ये मरते समय प्रभु का नाम तो ले रहा है । जबकि मेघनाद कुभाव से प्रभु का नाम ले रहा था, रावण प्रभु का नाम खीज या अनख से लेता था । जब प्रभु का नाम किसी भी तरह से लेने से ही कल्याण हो जाता है फिर प्रभु का नाम आप भाव से लोगे तो कल्याण कैसे नहीं होगा? जीव के लिए भगवन्नाम आवश्यक है । भगवन्नाम के माध्यम से प्रभु हमारे हृदय में आते हैं और उसे पवित्र करते हैं । भगवन्नाम तो मुर्दे को भी पवित्र बना देता है तभी तो मृत्यु के समय 'राम नाम सत्य' बोला जाता है ।

अगर किसी कारण से स्नानादि नहीं होता तो कोई बात नहीं है । स्नान तो बाहरी स्थूल देह को पवित्र करता है परन्तु भगवन्नाम तो अन्तःकरण को भी पवित्र बना देता है । जो सामर्थ्य भगवान् में है, उससे कहीं अधिक शक्ति 'भगवन्नाम, कथा-कीर्तन' में है । यहाँ तक कहा गया है कि 'भगवान् के नाम' में प्रभु से भी अधिक शक्ति है ।

निरगुन तें एहि भांति बड़ नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार ॥

अतः जरा-सा भी काल का, कष्ट का या दुःख का भय मत करो । केवल प्रभु का नाम स्मरण करते रहो । हम लोग भगवान् को न स्मरण करके दुःख का ही स्मरण करते रहते हैं । चित्त में जब तक भगवान् का नाम नहीं है, तब तक ही जीव को भय लगता है । 'भय' का तात्पर्य ही ये है कि 'प्रभु' चित्त से दूर हैं । सिर्फ 'आराधना' ही जीव को भय से रहित बनाती है । अतः प्रभु का हर क्षण स्मरण करो । तुलसीदासजी ने भी कहा है कि जब बुखार होता है तो खीर अच्छी नहीं लगती । वैसे ही मनुष्य के पापों के कारण ये अध्यात्मिक चीजें उसे अच्छी नहीं लगतीं । ये पाप जीव को प्रभु की शरणागति में नहीं आने देते ।

तुलसी पिछले पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय ।
जैसे ज्वर के अंश ते, भोजन की रुचि जाय ॥

एक उदाहरण देते हैं कि जब हनुमानजी ने अशोक वाटिका में जानकी जी को देखा तो देखते ही समझ गये कि जानकीजी के प्राण रामजी के विरह में क्यों नहीं छूटे ।

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

(श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड – ३०)

जानकीजी को भी दशरथजी की तरह श्रीरामजी से बिछुडने का उत्कट विरह था लेकिन उनका अनावर्त (अखण्ड) 'भगवन्नाम' चल रहा था । दूसरी बात 'जनकनन्दिनीजी' का ध्यान सिर्फ श्रीरामजी पर ही था, ये ध्यान की कपाट है जो प्राणों को निकलने नहीं देता । इस तरह का ध्यान तो हम लोग नहीं कर सकते फिर भी 'भगवन्नाम' तो सुनते हैं, 'कथा' तो सुनते हैं । तीसरी बात ये है कि सीताजी ने आँखों को अपने चरणों में लगा रखा था, दूसरा कोई दृश्य नहीं देखती थीं । इन तीन बातों के ही कारण सीताजी के प्राण नहीं निकले । प्राणों को छोड़ना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है - भगवन्नाम ग्रहण, बड़ी बात है - भगवान् का ध्यान, बड़ी बात है - भगवान् के चरणों में चित्त वृत्ति लगाना ।

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद्
गृणन्तः सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥

(श्रीभागवतजी ३/१६/११)

कोई भक्त गाली दे रहा है, मार रहा है तब भी उसकी पूजा करो । इसी प्रकार ब्रजवासियों के लिए कहा गया है - "अवगुण अनेक भरे तऊ ब्रजवासी हैं ।" इस प्रकार की भावना रखने से ब्रजोपासना सिद्ध हो जायेगी, रसिक बन

जाओगे और दोषदृष्टि रखने से रसिक नहीं बन पाओगे । सुधानिधिकार ने भी कहा है –

सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्त्तयः सर्वेप्यद्भुत सन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने संगताः ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्चये सर्वान्वस्तुतया निरीक्ष्य परम स्वाराध्य बुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६४)

यह ब्रजोपासना का सर्वश्रेष्ठ आत्मस्वरूप श्लोक है । श्रीबाबा के गुरुदेव परम पूज्य श्रीप्रियाशरणमहाराजजी इस श्लोक को प्रायः कहा करते थे । ब्रज की उपासना क्या है, इसको समझो – ब्रज में जो भी प्राणी हैं, ऐसा भाव रखो कि वे योगीन्द्रों में भी सबसे बड़े हैं, आनंदरस की मूर्ति हैं । कोई कहे कि ऐसा हम कैसे मान सकते हैं क्योंकि अमुक ब्रजवासी तो हमें गाली दे रहा था, डंडा लेके हमें मारने आया । सुधानिधिकार कहते हैं कि ब्रजवासी यदि क्रूर हैं, महापापी हैं, हत्यारे हैं, इतने बड़े पापी हैं कि उनका मुँह देखना, उनसे बोलना भी पाप है, उस स्थिति में देखकर भी उनमें यही भाव रखो कि यही राधा हैं, यही कृष्ण हैं - यही है ब्रज की उपासना । अब ऐसी किसकी छाती है जो ऐसा भाव रख ले । हम लोगों का मुँह तो जरा-सी बात में टेढ़ा हो जाता है तो क्या हम सच्चे ब्रजाराधक 'ब्रजोपासक' बन पायेंगे, क्या ऐसा व्यक्ति प्रेमीभक्त अथवा रसिक बन जाएगा, कभी नहीं बनेगा; वह तो सदा निंदा, राग-द्वेष आदि का रस ही पीता रहेगा, ये सब विकर्म हैं, इन्हें छोड़ना पड़ेगा, इसी को नैष्कर्म्य कहते हैं । महावाणी में कहा गया है – "विधि-निषेध के जे जे कर्म, तिनको त्याग रहे निष्कर्म ।" निषेध का कर्म जैसे - द्वेष आदि को छोड़ो । नैष्कर्म्य पर स्थित हो जाओ तब रस की सिद्धि होगी । किसी ग्रन्थ में भी देख लो, इन विकृतियों के रहते न रस की, न प्रेम की और न ही भक्ति की प्राप्ति होगी, न ही नाम की महिमा का फल मिलेगा बल्कि तुम नाम को नामाभास बना दोगे । झूठे ही कोई कहता है कि हमने भागवत-रामायण आदि का पाठ कर लिया, कोई कहता है कि हमने रसिकों की वाणी हितचतुरासी, केलिमाल, महावाणी आदि का पाठ कर लिया; अरे ! इनसे कुछ नहीं होना है, इससे न रस मिलेगा और न प्रेम मिलेगा, निषेध के कर्म तुमने छोड़े नहीं, नैष्कर्म्य प्राप्त हुआ नहीं तो तुम्हारा सारा पाठ व्यर्थ हो जाएगा । नाम-संकीर्तन करोगे तो वह नामाभास हो जाएगा । इसीलिए नाम का जो वास्तविक स्वरूप है, जैसा कि प्रस्तुत प्रकरण में तुलसीदासजी ने कहा – "अगुन अनूपम गुन निधान सो ।" अर्थात् नाम गुणातीत है, उसका अनुभव हमको नहीं हो रहा है, नाम अगुण (प्राकृतिक गुण सत, रज, तम से रहित दिव्य गुणमय) है लेकिन हमको तो सांसारिक गुणों से युक्त वस्तुओं की अनुभूति हो रही है । नाम अगुण है, अनुपम है, गुण निधान है, जितने भी गुण भगवान् में हैं, वे सभी उनके नाम में भी हैं ।

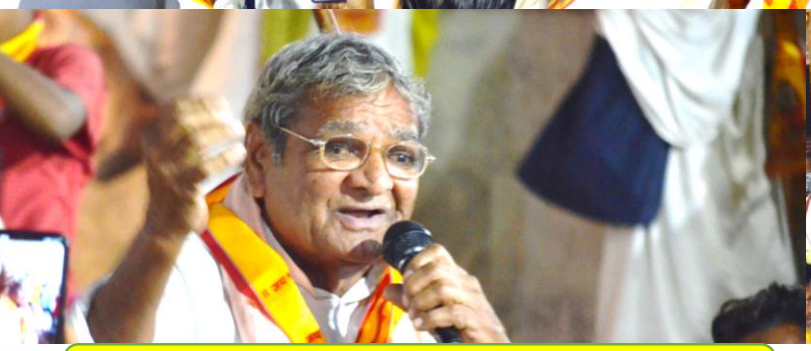

राधारानी ब्रजयात्रा २०२३ की झलकियाँ

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2021-2023 AT 22.12.23]